भा० जैन परिषद् परीक्षा बोर्ड द्वारा स्वीकृत

जैन

धर्म शिक्षावली

पाँचवां भाग

लेखक

पं० उग्रसैन जैन

एम० ए० एल-एल बी, वकील

रोहतक

प्रकाशक—

अ० भा० दि० जैन परिषद् पब्लिशिंग हाउस,

२०४, दरीवा कलाँ, देहली

पाँचवी बार
२००० प्रति

नवम्बर १ १९६४

मूल्य
६० पैसे

लेखक के दो शब्द

जैन पाठशालाओ के पठनक्रम मे जो पुस्तकें अब तक प्रचलित रही हैं, उनमें या तो ऐसी पुस्तकें हैं जिन में केवल धर्म शिक्षा के ही पाठ हैं, या ऐसी पुस्तकें है जिनमे नीति के पाठ और कथा कहानियाँ ही हैं। भारतवर्षीय दि० जैन परिषद ने उक्त दोनों विषयों को एक ही कोर्स मे समावेश करने की आवश्यकता समझी और ऐसे कोर्स की तैयारी के लिए मुझ से विशेष अनुरोध किया। परिषद की आज्ञा पालन तथा शिक्षा प्रचार के भाव को हृदय में रख कर मैंने पाच पुस्तको मे तैयार करने का प्रयास किया है यह कार्य निज ख्याति या लोभादि कषाय के वशीभूत होकर नही किया गया है।

जिन २ महानुभावो ने इन पुस्तको के सम्बन्ध मे अपनी शुभ सम्मति द्वारा सहायता दी है, उनके प्रति हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करते हैं। तथा उन पुस्तक रचयिताओ तथा कवियों के भी हम अत्यन्त आभारी हैं कि जिनकी पुस्तको में से कुछ गद्य और पद्य पाठ इनमे उद्धृत किये गयेहैं ।

प्रत्येक पाठ के अन्त में प्रश्नावली लगादी गई है। इस से अध्या-पको को पाठ पढाने मे तथा छात्रो को पाठ याद करने मे सुविधा रहेगी।

—लेखक

विषय सूची

श्रीवीतरागायनय

धर्म शिक्षावली

(पाँचवाँ भाग)

पाठ १

प्रार्थना

हे सर्वज्ञ वीर जिन देवा, चरण शरण हम आते हैं ।
ज्ञान अनन्त गुणाकर तुमको, चरणन शीश नवाते है।१।
कथन तुम्हारा सबको प्यारा, कही विरोध नहीं पाता ।
अनुभव बोध अधिक जिनके है, उन पुरुषो के मन भाता।२।
दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूपी, मारग तुमने दर्शाया ।
यही मार्ग हितकारी सब का, पूर्व ऋषि गण ने गाया।३।
रत्नत्रय को भूल न जावे, इसीलिए उप नयन करें ।
ब्रह्मचर्य को दृढ़तम पालें, सप्त व्यसन का त्याग करें।४।
नीति मार्ग पर नित्य चलें हम, योग्याहार विहार करें ।
पालें योग्याचार सदा हम, वर्णाचार विचार करें।५।

धर्म मार्ग और वैद्य मार्ग से, देशोद्धार विचार करें ।
आर्ष वचन हम दृढ़तम पालें, सत्सिद्धान्त प्रचार करें।६।
श्री जिन धर्म बढ़े दिन दूने, पञ्च आप्त नुति नित्य करें ।
सत्संगति को पाकर स्वामिन्, कर्म कलंक समूल हरें।७।
फलें भाव यह सभी हमारे, यही निवेदन करते हैं ।
'लाल' बालमिल भाल वीरके, चरनों में नित धरते हैं।८।

प्रश्नावली

१ इस प्रार्थना मे किन को नमस्कार किया गया है ?
२ वीर भगवान के कथन की क्या विशेपता है ?
३ हितकारी मार्ग कौनसा है ?
४. इस कविता मे हमारे लिए कौन कौन से हितकारी कर्तय सुझाये हैं ?
५ पच आप्त, आर्ष बचन, सत्सिद्धान्त से क्या समझते हो ?

पाठ २

क्षमाशूर और तपशूर

महाराजा श्रेणिक एक दिन संध्या समय बन में क्रीड़ा करके आ रहे थे, उन्होने मार्ग मे एक ध्यान में लीन निर्ग्रन्थ जैन मुनि यशोधर महाराज को अचल खड़े हुवे देखा । राजा का धर्म द्वेष भड़क उठा । शीघ्र

साधु वर्गों की [illegible] में [illegible] है।

ही उन ने पांच सौ शिकारी कुत्ते मुनिराज के ऊपर छोड़ दिये, मुनिराज परम शान्ति स्वभावी थे, आत्म ध्यान में लीन होने के कारण उन्हें यह जरा भी विचार न आया कि यह उपसर्ग कौन कर रहा है।

ज्योंही कुत्ते मुनिराज के पास पहुँचे, वे उनकी ध्यानमई परम शान्त मुद्रा को देख कर शान्त हो गये उन की क्रूरता जाती रही। आत्मीक प्रभाव भी खूब होता है, जैसे मन्त्र कीलित सर्प शान्त हो जाता है, वैसे ही वे कुत्ते भी शान्त हो गये, मुनिराज की प्रदक्षिणा दे कर उनके चरणों में सिर झुकाकर बैठ गये।

महाराज श्रेणिक ने जब यह दृश्य देखा तो मारे क्रोध के वह लाल हो गये, मियान से तलवार निकाल कर मुनि को मारने के लिये जा ही रहे थे कि एक भयंकर सर्प फण को उठाये हुवे, फुंकार मारता हुवे, उनको नजर पड़ा, इसे अशुभ शकुन समझ कर श्रेणिक ने झट से उस सर्प को मार डाला और बड़े क्रूर परिणामों के साथ मरे हुवे सर्प को उठाकर मुनिराज के गले में डाल दिया।

मुनिराज तो ध्यानारूढ थे, वीतरागी थे, उन्होंने जब अपने गले में सर्प पड़ा जाना तो उन्होंने अपना ध्यान और भी बढ़ा लिया और वैराग्य भावना तथा वैराग्य को बढ़ाने वाली बारह भावनाओं का चिन्तवन

करना शुरू कर दिया ।

इधर राजा श्रेणिक तीन दिन तक इधर उंधर अपने काम मे लगे रहे, चौथे दिन रात्री के समय जैन धर्म की कट्टर श्रद्धानी रानी चेलना के महल मे आये तो यह सब कौतुहल रानी से कह सुनाया । यह सुनते ही रानी कांप उठी, उसका हृदय दहल गया, अपने गुरु मुनिराज पर घोर उपसर्ग जान अनेक प्रकार शोक करने लगी, उसकी आँखो से टप टप आंसू गिरने लगे। इससे महाराज श्रेणिक का कठोर हृदय भी पसीज गया, कहने लगे—'प्रिय तू रंचमात्र भी चिन्ता न कर, साधु तो वहाँ से कभी का चलता बना होगा और उस ने उस सर्प को भी निकालकर फैंक दिया होगा।'

श्रेणिक के ऐसे वचन सुन चेलना ने कहा—'महा-राज ऐसा कहना आप का भ्रम है, यदि वे मेरे पवित्र निर्ग्रंथ गुरू है तो वे उस स्थान से डिगे नहीं होगे और ना ही उन्होने वह सर्प अपने गले से निकाल कर फैका होगा, सुमेरु पर्वत भले ही चलायमान हो जाये, परन्तु वे धीर वीर तपस्वी साधु उपसर्ग आने पर जरा भी विचलित नही होते हैं और समुद्र के समान गम्भीर, वायु के समान निष्परिग्रह अग्नि के समान कर्म भस्म करने वाले, आकाश के समान निर्लेप, जल के समान निर्मल चित्त के धारक, एवं मेघ के समान परोपकारी

होते है। आप विश्वास रखें जो गुरु परम ज्ञानी, परम ध्यानी, दृढ वैरागी होगे वे ही मेरे गुरू हैं। इन से विपरीत कायर, परिग्रही, व्रत तप आदि से शून्य मेरे गुरु नहीं हो सकते। हे नाथ ! आपने बड़ा अनर्थ किया जो वृथा ही अपनी आत्मा को दुर्गति का पात्र बनाया।'

राजा को यह जान कर बडा आश्चर्य हुवा और उसी समय रानी चेलना सहित रात्रि को मुनिराज के पास पहुचे। देखते है कि मुनिराज वैसे ही ध्यानारूढ़ खड़े हैं जैसे कि चार दिन पहले खडे थे, गले में उसी तरह मरा हुआ सर्प पड़ा है, कीडियां शरीर पर चिपटी हुई हैं। यह देखते ही राजा के हृदय में एकदम भक्ति का समुद्र लहरा उठा। मुनिराज को देखते ही चेलना का शरीर भी रोमाचित्त हो आया, वह शाघ्र ही उनके पास आई, झट से गले से सर्प निकाल कर फैक दिया और कीड़ियाँ सब यत्नाचार पूर्वक पोछकर साफ कर दी। मुनिराज के शरीर को गर्म पानी से धोकर उस पर चंदन का लेप कर दिया। रात्री होनेके कारण मुनिराज बोले नही मौन से रहे। राजा और रानी दोनो आनन्द के साथ उनके सामने भूमि पर बैठ गये। सवेरा होते ही फिर रानी ने मुनिराज के चरणो का भक्ति भाव से पूजन किया, उनकी स्तुति की। फिर

राजा और रानी दोनों मुनिराज को नमस्कार कर यथा स्थान बैठ गये।

जब मुनिराज का ध्यान खुला तो उन्होंने दों को समान रूप से 'धर्म वृद्धि' आशीर्वाद दिया। मुनि महाराज ने अपनी परम भक्त रानी और द्वेषी राजा मे कुछ भी भेद भाव न किया, दोनों को बराबर समझा। उस समय मुनिराज की उत्तम क्षमा को देखकर महाराज श्रेणिक बड़े लज्जित हुए और अपने मन में बड़ा दुःख करने लगे। मुनिराज के इस शिष्ट बर्ताव से श्रेणिक मन ही मन विचार करने लगे—हाय! मैं बड़ा पापी हूँ, मैंने ऐसे घोर तपस्वी योगीश्वर के मारने का प्रयत्न किया, धिक्कार है मेरे जीवन को। मुनिराज अन्तर्यामी थे, ज्ञान से उन्होंने राजा के मन की बात जान ली। कहने लगे—'राजन् तुम्हें अपने चित्त मे किसी प्रकार का दुःख नहीं मानना चाहिये। जो शुभ अशुभ कर्म किया है उसका अच्छा बुरा फल अवश्यमेव भोगना पडता है।'

मुनिराज के शांतिमय और हितकारी वचनो को सुनकर महाराज श्रेणिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। इसी प्रकार अनेक प्रकार की धर्म चर्चा राजा श्रेणिक ने मुनिराज से की। राजा के विचारो ने पलटा खाया उनके विचार की सीमा बढ गई, उन्होंने सोचा कि

विषय-लंपटी, कामी क्रोधी, अविचारी तथा ज्ञान ध्यान से शून्य दंभी साधु कभी सच्चे श्रमण अर्थात् गुरु नहीं हो सकते । इस प्रकार विचार करते उनकी श्रद्धा जैन-धर्म मे पूर्ण रूप से हो गई । रानी चेलना सहित महाराज श्रेणिक ने मुनिराज को नमस्कार किया, उनकी बारंबार स्तुति करते हुए राजा और रानी बड़े आनन्द के साथ राज महल की ओर चल दिये ।

सम्राट श्रेणिक इस प्रकार महारानी चेलना सहित जैन धर्म को पालते हुए आनन्द पूर्वक अपने राज्य की सुव्यवस्था करते हुए राज्यगृह नगर मे बडे ठाट-बाट के साथ रहने लगे ।

धन्य है ! यशोधर मुनिराज की इस उत्कृष्ट उत्तम क्षमा तथा त्याग और सहनशीलता को, वास्तव मे वह सच्चे साधु थे, वे यथार्थ क्षमाशूर, तपशूर थे, जैसे कि जैन साधु हुआ करते है ।

प्रश्नावली

१ राजा श्रेणिक ने श्री यशोधर मुनिराज पर शिकारी कुत्ते क्यो छोडे ?

२ उन कुत्तो ने मुनिराज को कोई हानि पहुँचाई या नही—यदि नही तो क्यो नही ?

३ राजा श्रेणिक ने मुनिराज के गले मे सर्प क्यो डाला ? क्या मुनिराज ने उस सर्प को अपने हाथ से निकाल फैका ? यदि नही तो किसने और कब दूर किया ?

४ ध्यान खुलने के बाद मुनिराज ने राजा श्रेणिक को क्यो

पहले आशीर्वाद दिया ?

५ आशीर्वाद ने के बाद राजा श्रेणिक के क्या परिणाम हुए और मुनिराज ने उनको कैसे समझाया ?

६. निर्ग्रन्थ गुरु के कुछ विशेष लक्षण अपनी परिभाषा मे समझाओ ?

७. उत्तम क्षमा से आप क्या समझते है ? दृष्टात देकर बताओ।

८. मुनिराज के आत्मबल का क्या प्रभाव श्रेणिक पर पडा और श्रेणिक मे क्या परिवर्तन हुआ ?

९ रानी चेलना के बर्ताव से आपको क्या शिक्षा मिलती है ?

पाठ ३

चतुर्गति के दुःख और उनका कारण

तीन लोक मे जितने अनन्त जीव हैं सब ही दुःख से डरते हैं और सुख चाहते हैं। अनादि काल से यह संसारी जीव मोह रूपी मदिरा को पीकर बेहोश हो रहा है और अपने शुद्ध चिदानन्द रूपी निज स्वरूप को भूले हुए, चतुर्गति रूप संसार मे वृथा भ्रमण करता फिरता है। इस जीव का अनन्त समय तो निगोद मे ही एकेन्द्रिय शरीर धारण किये हुए ही चला जाता है। निगोद मे बडी वेदना सहन करनी पड़ती है। वहाँ की वेदना का अनुभव इसी बात से कर लिया जावे कि एक एक स्वांस मात्र मे वहाँ अठारह बार जन्म मरण होता है।

निगोद से निकलने पर यह जीव पृथ्वी काय, जल काय, अग्नि काय, वायु काय और वनस्पति काय, इन स्थावर पर्यायो को धारण करता है। एकेन्द्रिय जीवों के अकथनीय कष्ट हैं—जरा उन पर गौर कीजिये। मिट्टी को खोदते हैं, रौंदते हैं, जलाते हैं, कूटते हैं, उस पर अग्नि जलाते हैं, धूप का ताप से पृथ्वी कायिक जीव मर जाते हैं। एक चने के दाने बराबर सचित मिट्टी में अनगिनत पृथ्वी कायिक जीव होते हैं—कूटने पीसने रौंदने आदि से इन सब को महान कष्ट होता है। पराधीनपने से सब सहने पड़ते हैं, बच व बचा कर नहीं सकते, कहीं भाग नहीं सकते, असमर्थ हैं। सचित जल को गर्म करने, मसलने, रौंदने आदि से महान कष्ट जल-कायिक जीवों को उसी होता है जैसे पृथ्वी कायिक जीवों को। जल-कायिक जीव का शरीर भी बहुत छोटा होता है। पानी की एक बूंद मे अनगिनत जल-कायिक जीव होते है। वायु-कायिक जीव शीतादि की टक्करों से, गर्मी के झोकों से, जल की तीव्र वृष्टि से, पंखों से, हमारे दौड़ने कूदने से टकरा कर बड़े कष्ट से मरते हैं, इनका शरीर भी बहुत सूक्ष्म होता है, एक हवा के झोके मे अनगिनती वायु-कायिक जीव होते हैं।

जलती हुई अग्नि पर पानी डाल कर बुझाने से मिट्टी डाल कर बुझाने से, तथा लाल तपते हुए लोहे

को घन से पीटते हुए, अग्नि-कायिक जीवों को स्पर्श का बहुत बड़ा दुःख होता है। इन का शरीर भी बहुत छोटा होता है। एक अग्नि की उठती लौ मे अनगिनत अग्नि-कायिक जीव होते हैं।

वनस्पति दो प्रकार की होती है, एक साधारण और दूसरी प्रत्येक। जिस वनस्पति का शरीर एक हो व उसके स्वामी बहुत से जीव हो जो साथ २ जन्मे व साथ २ मरें। उनको साधारण वनस्पति कहते हैं। जिसका स्वामी एक हो जीव हो उसे प्रत्येक जीव कहते है। बहुधा आलू, मूली, गाजरआदि जमीकन्द भूमि मे फलने वाली तरकारिया साधारण होती हैं। अपनी मर्यादा को प्राप्त पक्की ककडी, नारगी, पक्का आम, अनार, सेव, अमरूद आदि प्रत्येक वनस्पति हैं। इन्हीं वनस्पति कायिक जीवों को बड़ा कष्ट होता है। कोई वृक्षो को काटता है, छीलता है, पत्तो को तोड़ता है नोचता है, फलो को काटता है, साग को छोकता है पकाता है, घास को कतरता है, पशुओं द्वारा या मनुष्यो द्वारा बड़ी निर्दयता के साथ इन वनस्पति कायिक जीवो को घोर कष्ट दिया जाता है। ये पराधीन हुए व असमर्थ होने के कारण वेदनाओ को सहते हैं और कष्ट से मरते हैं। ये सब इनके बांधे हुए पाप कर्मो का फल है।

बाहर बोझ पशुओ पर लादा जाता है, जख्मी बैलो, घोड़ो खच्चरो, गधों को मार मार कर चलाया जाता है यथा समय उनको चारा पानी भी नहीं दिया जाता गर्मी सर्दी की बाधा उनको अनेक तरह से सहन करनी पड़ती है। कितने ही पक्षियों को तथा पशुओं को पिंजरों में बन्द कर दिया जाता और उनकी स्वतन्त्रता को नष्ट कर दिया जाता है। मछलियों को जल में से निकाल २ कर जमीन पर पटक दिया जाता है जहाँ तड़प २ कर मर जाती हैं, मनुष्य अपनी खुराक के लिये, अपनी दवाइयो के लिये, अपनी सजावट के लिये और अपने भोग विलासके लिये कितने ही पशु-पक्षियों को निर्दयता पूर्वक नित्य प्रति विध्वंश कर डालता है। इस प्रकार पचेन्द्रिय तिर्यंचो को असहनीय दुःख सहने पड़ते हैं।

नरक गति मे नारकी जीवो को बहुत दिनों तक घोर दुःख भोगने पड़ते हैं। निरन्तर परस्पर एक दूसरे से लड़ते रहते हैं उनको भूख प्यास की बाधा कभ मटती ही नहीं भूख इतनी कड़ी होती है कि तीन लोक के अनाज खा लेने पर भी वह तृप्त नहीं होती प्यास इतनी होती है कि सारे समुद्रो के जल से भी शान्त नहीं हो पाती-नरको की भूमि कर्कश और दुर्गन्धमय होती है हवा छेदक और असह्य होती है। अधिक गर्मी और अधिक शीत की घोर वेदना वहाँ सहन करनी पड़ती है।

नारकियों का शरीर बहुत ही कुरूप और ड़रावना होता है। उसके देखने मात्र से ग्लानि हो जाती है नारकिओ का शरोर वैक्रियिक होता है जो छेदे जाने पर तथा भेदे जाने पर भी पारे को तरह फिरसे मिल जाता है। आयु पूरी हुए विना वे नरक से छूट नही सकते। नारकी पंचेन्द्रिय सैनी नपुंसक होते हैं, उनके पाचों इन्द्रियो के भोगो की तृष्णा होती है. परन्तु उस तृष्णाकी शांति के उपाय तथा साधन न होने से वे निरन्तर क्षोभित और संतापित रहते हैं, उनके परिणाम बड़े खोटे होते हैं, इस प्रकार नाना भांति के कष्ट नरक गति मे इस जीव को सहने पड़ते है।

मनुष्य गति के दुःख तो प्रकट हो हैं। माता के गर्भ मे नौ महीने रहना पड़ता है, वहाँ घोर वेदनायें सहता है; जन्म के समय मे जो घोर कष्ट होता है वह कहने मे नहीं आ सकता। शिशु अवस्था मे असमर्थ होने के कारण खान-पान यथासमय न मिलने पर बार २ रोना पड़ता है, अज्ञान दशा होती है, अज्ञान के निमित्त थोड़ा सा भो दु.ख बहुत ज्यादा मालूम पड़ता है, किसो के माता पिता मर जाते हे तो दुःख, किसी के सन्तान नहीं होती है तो दुःख, सन्तान होकर मर जाती है तो दुःख, सन्तान जोवित रहती है और खोटी हो जाती है तो दुःख, किसो को रोग सताता है, कोई स्त्री के

वियोग में तड़पता, कोई दरिद्र से दुःखी है। किसी को इष्ट वियोग का दुःख है तो कोई अनिष्ट संयोग के मारे विलखता है। किसी को शारीरिक पीड़ा है तो किसी को मानसिक चिन्ता सताती है। मनुष्य गति मे बड़ा दुःख तृष्णा का है। पाँचों इन्द्रियों के विषय भोगो की तृष्णा सताती रहती है। इच्छित पदार्थ यदि नहीं मिलते हैं तो बड़ा कष्ट होता है। "दाम बिना निर्धन दुःखी तृष्णा वश धनवान" चाह की दाह में बड़े २ चक्रवर्ती भी जला करते हैं। बुढ़ापे में शरीर शिथिल हो जाता है, इन्द्रियाँ काम नहीं करती, लोलुपता बढ़ जाती है, पराधीन हो जाता है—वृद्ध अवस्था अर्द्ध मृतक समान है। इस प्रकार मनुष्य गति मे इस जीव को बड़े घोर दुःख सहन करने पड़ते हैं।

देव गति मे यद्यपि शारीरिक कष्ट नहीं हैं, परन्तु मानसिक कष्ट बहुत भारी है। देवों मे छोटी बड़ी पदवियाँ होती हैं, देवों की विभूति संपदा कम ज्यादा होती है। नीची पदवी वाले देव ऊँचो को देखकर मन मे बड़ा ईर्षा भाव रखते हैं, उनको देखकर जला करते हैं जब किसी देवी का मरण हो जाता है तब इष्ट वियोग का दुःख होता है, जब किसी देव का मरण काल आता है तो वियोग का बड़ा दुःख होता है। अधिक भोग भोगते हुए भी उनकी तृष्णा बढ़ती ही रहती है कभी

अकाम निर्जरा के कारण भवनत्रिक (भवन वासी देव, ज्योतिष देव, व्यन्तर देव) तीन प्रकार के देवों में भी जन्म ले लेता है तो वहाँ विषय चाह की अग्नि मे जला करता है और यदि कल्पवासी देव भी हो जाता है तो वहाँ भी सम्यक्दर्शन बिना दुःख पाता है। वहाँ से चल कर फिर स्थावर अर्थात् एकेन्द्रिय हो जाता है।

इस प्रकार इस ससारी जीव ने पांच प्रकार के परिवर्तन (द्रव्य-परिवर्तन, क्षेत्र-परिवर्तन काल-परिवर्तन, भव-परिवर्तन और भाव-परिवर्तन) अनन्त वार किये हैं इस सब संसार भ्रमण का मूल कारण मिथ्यादर्शन है।

प्रश्नावली

१ चारो गतियो के नाम बताओ ?
२ जीव को निगोद मे कैसी वेदना होती है ?
३. निगोद से निकल कर यह जीव किस पर्याय मे जाता है ?
४ पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय और पवनकाय के जीवो के दु ख का वर्णन करो।
५ वनस्पति कितने प्रकार की होती हैं ? प्रत्येक वनस्पति किसे कहते हैं और साधारण वनस्पति किसे कहते है दृष्टान्त देकर बताओ ?
६ वनस्पतिकाय के जीवो के दुखो का वर्णन करो।
७ विकलत्रय किन्हे कहते है ?
८ तिर्यंच गति के दुखो का वर्णन करो ?
९ नरक गति के दु खो का वर्णन करो ?
१० नारकियो का शरीर कैसा होता है ?
११ मनुष्य गति के दु खो का वर्णन करो ?

६ सत् शास्त्र के अभ्यास के लिये नियमित समय रखना चाहियें

१२ देवगति मे जीव को क्या क्या दु ख होते हैं ?
१३ भवनत्रिक से तुम क्या समझते हो ?
१४ पच परिवर्तन के नाम बताओ ?
१५ ससार परिभ्रमण का मूल कारण क्या है ?
१६ नीचे लिखे का अर्थ बताओ—
(अ) "अर्द्ध मृतक सम बूढा पनो"
(आ) "दाम बिना निर्धन दु खी, तृष्णावश धनवान।"

—०—

मिथ्यात्व

संसारी जीव अनादि काल से मिथ्या दर्शन ज्ञा चारित्र के कारण इस चतुर्गति रूप संसार मे भ्रम करता चला आ रहा है हर एक गति मे इसे नान प्रकार के दुःख और कष्ट भोगने पडते हैं। जन्म मर के अनेक दुःख सहता है। जीव, अजोव, आश्रव, बंध संवर निर्जरा और मोक्ष, इन सात तत्वो का इसे यथाथ श्रद्धान नहीं होता है। इनके स्वरूप का और का औ उल्टा श्रद्धान कर लेना ही मिथ्यादर्शन है—आत्मा क स्वरूप जानना देखना है आत्मा जड़ रूप नहीं है, यह चैतन्य स्वरूप है। यह पुद्गल आकाश, धर्म, अधर्म और काल इन पाँचो द्रव्यों से सर्वथा भिन्न है, यह पाँचों जड़रूप हैं, अज्ञानी जीव आत्मा को ऐसा न मान अपने शरीर को ही आत्मा समझता है। जाति में, कुल मे, शरीर मे, धन मे, धाम में, नगर मे, कुटुम्ब मे, अपना

ग्रापा माना करता है। वह माना करता है मै सुखी हूँ, मै दुःखी हूँ, मै गरीब हूँ, मैं राजा हूँ, यह रुपया पैसा मेरा है, यह मेरा घर है, यह मेरी गाय भैंस है, यह हाथी घोड़ा, मोटर मेरी है, मै बड़ा हूँ, मै छोटा हूँ, यह स्त्री मेरी है, यह पुत्र मेरा है, अथवा मै बलवान हूँ, मैं निर्बल हूँ, मै कुरूप हूँ, मै सुन्दर हूं, मै मूर्ख हूँ, मै चतुर हूँ, शरीर के नाश होने को अपना मरण और शरीर के जन्म को अपना जन्म माना-करता है। राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ जो नित प्रति अपनी आँखो के सामने जलते २ जीवो को दुःख देते हैं उन्हीं का सेवा करते वे सुख मानता है। मिथ्यादृष्टि पहले बांधे हुवे शुभ कर्मो के फल भोगने मे रुचि और अशुभ कर्मों के भोगने अरुचि करता है क्यो कि उसे आत्म स्वरूप का ज्ञान नहो है, अपने आत्मा के हित करने वाले कारणों ज्ञान और वैराग्य को अपने लिये दुखदाई समझता है।

मिथ्यादृष्टि जीव अपने आत्मा की शक्ति को खो कर अपनी इच्छाओ को नही रोकता है और न ही चिन्ता रहित आनन्द स्वरूप अविनाशी मोक्ष के सुखको ढता है। ऐसी उलटी श्रद्धा सहित जो कुछ ज्ञान होता है उसी को कष्ट देने वाला ज्ञान या मिथ्याज्ञान समझना चाहिये।

मिथ्यादर्शन और मिथ्याज्ञान के साथ २ पाँचो

इन्द्रियों के विषय में प्रवृत्ति करना मिथ्याचारित्र है
इस प्रकार मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र
स्वभाव मे ही अनादि काल से जीवो के बने रहते
इनको अगृहीत मिथ्यात्व कहते हैं।

खोटे गुरु, खोटे देव, और खोटे धर्म की सेवा करना
मिथ्या दर्शन है।

खोटे गुरु—जो गुरु पाखंडी, वेषधारी, इन्द्रिय विषय
लंपटी, धूर्त हैं, अज्ञानी है, परिग्रही है, आरम्भी
जो अपने को पूज्य धर्मात्मा मान अन्य भोले भा
जीवो को ठगते है, उनसे अपनी पूजा कराते हैं,
हिंसा मे प्रवृत्ति कराने वाला उपदेश देते हैं, जो कुकथा
कहते है, रागी, द्वेषी तथा दंभी हैं, वे कुगुरु हैं। संसार
समुद्र मे तैरने के लिये पत्थर की नाव के समान हैं।

खोटे देव—जो देव रागी द्वेषी हैं, अल्पज्ञ है, जो
भूख प्यास, काम-क्रोधादि सहित हैं, जो भय सहित है
शस्त्रादिक को ग्रहण करते है। जिनके द्वेष, चिन्ता, रो
गादिक निरन्तर बने रहते है, कामी, रागी होने के कारण
निरन्तर पराधीन रहते है, जो अल्पज्ञ है, वे सच्चे देव
नहीं है, खोटे देव है। जो मूर्ख लोग ऐसे देवों की सेवा
करते है, वे संसार समुद्र से पार नहीं हो पाते

खोटा धर्म—जिन २ क्रियाओं के करने में राग-द्वेष पैदा हो, अपने और दूसरों के परिणामों मे संक्लेश होवे जो साक्षात् त्रस और स्थावर जीवो की हिंसा का कारण होवें, उन सब को खोटा धर्म समझना चाहिये। हिंसा-मय चारित्र का पालना खोटा धर्म है। जो ऐसे कुधर्म का सेवन करते है, दुख पाते है।

इस प्रकार ऊपर बताये हुए खोटे गुरु, खोटे देव और खोटे धर्मका श्रद्धान करना गृहीत मिथ्यादर्शन है।

खोटे शास्त्र—जो शास्त्र एकान्त पक्ष से दूषित है, अल्पज्ञ के कहे हुए है, रागी, द्वेषी, अभिमानी, लोभी, दंभी, कपटी, विषयालपटियों के रचे हुए है वे खोटे शास्त्र है। जिन शास्त्रों मे पूर्वापर विरोध पाया जाता है, जो वस्तु का यथार्थ स्वरूप न बताकर आडंबर रूप, लोगो के चित्त को खुश करने वाली असत्य विकथाओ का कहने वाला हो, जिसमे प्राणियो की हिंसारूप उपदेश दिया गया है, ऐसे खोटे शास्त्रो का पढना दुख देने वाला मिथ्याज्ञान है। ये ही गृहीत मिथ्याज्ञान है।

अपनी नामवरी, रुपये पैसे के लोभ और अपनी पूजा प्रतिष्ठा की इच्छा रखते हुए अनेक प्रकार से अपने शरीर को तपाना, जीव और शरीर के भेद को न जानकर अन्य अधर्मरूप क्रियाए करके शरीर को

क्षीण करना तथा इसी प्रकार की और अनेक क्रिया करवाना करना सब गृहीत मिथ्या-चारित्र है।

इस प्रकार कुगुरु, कुदेव, कुधर्म का सच्चा मानन मिथ्यादर्शन है। संसार बढाने वाले खोटे शास्त्रो क पढ़ना मिथ्याज्ञान है, ज्ञान विना शरीर का नाश करने वाल हिंसामयी तप का करना मिथ्याचारित्र है। यह गृहीत मिथ्यात्व का स्वरूप समझना चाहिये।

ससार भ्रमण का मूल कारण मिथ्यात्व है। मिथ्या दृष्टि जीव पापो मे फँसा रहता है, आत्म-हीन साधन में प्रमादो रहता हे, तीव्र क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय करता है। मन, वचन, काय को क्षोभित रखता है, ससार मे अनेक कष्ट भोगता है। ऐसा जान मिथ्यात्व का सर्वथा त्याग करना ही श्रेष्ठ है।

मिथ्यात्व के पांच भेद

पहले बता चुके है कि जीवादितत्वो के यथार्थ स्वरूप का श्रद्धान न होकर और २ रूप उलटा श्रद्धान होनेको मिथ्यात्व कहते है मिथ्यात्व के कारण संसारी जीव में अनेक तरंग उठा करती है अर्थात् जीव के शान्त स्वभाव का नाश होता है। इसी कारण यह मिथ्यात्व कर्मों की उत्पत्ति का कारण है।

मिथ्यात्व पाँच प्रकार का होता है—एकान्त, विपरीत, विनय, सशय और अज्ञान।

एकान्त मिथ्यात्व—वस्तु मे अनेक गुण होते है जैसे दूध पोना शरीर को पुष्ट बनाता है, परन्तु बहुत से रोगो में हानिकारक भी है—इस हेतु से दूध लाभ-दायक भी है और हानिकारक भी । एक मनुष्य जो २० वर्ष का है वह १० वर्ष के बालक से बड़ा और ५० वर्ष के मनुष्य से छोटा है। इस हेतु वह बड़ा भी है और छोटा भी । इसी प्रकार वस्तु मे अनेक गुण होते है, परन्तु ससार के अल्पज्ञ जीव वस्तु के एक ही गुण को लेकर उसी के अनुसार उस वस्तु का श्रद्धान कर लेते है । इस का नाम एकान्त मिथ्यात्व है । श्री वीतराग अरहन्त भगवान हमारा न कुछ बिगाड़ते है न कुछ संवारते है, क्योकि वह तो राग द्वेष रहित वीतराग है, परन्तु उनका ध्यान करने से तथा उनकी वीतरागता का चिंतवन करने से हमारे परिणामो में वीतरागता आती है जिससे पाप कर्मों का क्षय होता है । इस हेतु वह हमारे दुःख को दूर करने वाले है, परन्तु उनको साक्षात् दु ख का दूर करने वाला कर्ता परमेश्वर मानना एकान्त मिथ्यात्व है। स्नानानादि शरीर शुद्धि और शुचि क्रिया से मन की मलीनता दूर करने मे ससारी जीवो को सहायता मिलती है परन्तु स्नान करने या शुचि क्रिया ही कर लेने में धर्म मानना और मन की शुद्धि का कुछ भी विचार न करना एकान्त मिथ्यात्व है । इस प्रकार वस्तु मे अनेक स्वभाव

होते हुए उनमें से किसी एक रूप ही वस्तु का रूप होने की हठ पकड़ना 'एकान्त मिथ्यात्व' है।

विनय मिथ्यात्वः—सत्य और असत्य की परीक्षा न करके हरेक तत्व को ठीक मानकर भोलेपन से विनय करना विनय मिथ्यात्व है। जैसे पूजने योग्य वीतराग सर्वज्ञ देव हैं, अल्पज्ञ रागी द्वेषी देव पूजा योग्य नहीं हैं तो भी सरल भाव से, विवेक बिना दोनों की बराबर भक्ति करना विनय मिथ्यात्व है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि बिना गुणों के विचार समस्त ही देव कुदेवों की समान विनय करना और सारे ही मत मतान्तरों को एक ही मानकर उनकी भक्ति करना 'विनय मिथ्यात्व' है।

विपरीत मिथ्यात्वः—जिसमें कभी धर्म हो ही नहीं सकता, उसको धर्म मान लेना 'विपरीत मिथ्यात्व' है, जैसे हिंसा मे धर्म मानना।

संशय मिथ्यात्वः—सुतत्व और कुतत्व का निर्णय न करके संशय मे पड़ा रहना, कौन ठीक है कौन ठीक नहीं है ऐसा एक तरफ निश्चय न करके भ्रम में पड़े रहना संशय मिथ्यात्व है। जैसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्ररूप मोक्षमार्ग है या नहीं।

अज्ञान मिथ्यात्वः—तत्वों के जानने की चेष्टा न करके देखा देखी किसी भी तत्व को मान लेना 'अज्ञान

मिथ्यात्व' है। हिताहित की परीक्षा रहित श्रद्धान को 'अज्ञान मिथ्यात्व' कहते है जैसे—वृक्षादि एकेन्द्रिय जीवो को अपने हिताहित का कुछ भी ज्ञान नहीं है। बहुत से मनुष्य अपने सांसारिक कामो मे ऐसे फसे रहते हैं कि उन्हे धर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं होता और धर्म की ओर से ऐसे हो अज्ञानी रहते हैं जैसे पशु या वृक्ष आदि; यह 'अज्ञान मिथ्यात्व' है।

यह मिथ्यात्व जीव का महान शत्रु है इसी से यह संसारी जीव संसार मे परिभ्रमण कर रहा है। हम रोज देखते हैं कि ससारी जीव मिथ्यात्व के वश होकर रागी द्वेषी देवो की भक्ति पूजा करते हैं। अविवेकी, अभक्ष्यभक्षण करने वाले, ढोंगी, दंभी, मानी, कुलिंगियों की तथा उनके मार्ग की प्रशंसा करते हैं। अपने कार्य की सिद्धि के लिये देव-देवताओ की बोलत कबूलत करते है। ऐसा विचार करते है कि हमारे अमुक प्रयोजन की सिद्धि हो तो छत्र चढ़ावें, दीपक जलावें, बच्चो के बाल चोटी उतरायें, यह सब तीव्र मिथ्यात्व है। ग्रहण मे सूतक मानना, संक्राति मानना, ग्रहों का दान देकर अपने को सुख शांति का होना मानना बालू रेत का ढेर लगाकर पूजना, कुवाँ पूजना, पीपल पूजना, शीतला मसानी आदि का पूजना, उनको धोक देना इत्यादि ये सब मिथ्यात्व है। इनमें से किसी भी

मिथ्यादर्शन में फँसा हुआ प्राणी निर्मल सम्यकदर्शन को नही प्राप्त कर सकता है—सच्चे धर्म का श्रद्धान उसको नही हो पाता, मनुष्य जन्म को वृथा ही खो बैठता है। मिथ्यात्व के कारण प्राणी विषय भोगों की लालसा का मारा रात दिन विषय की तृप्ति के फंदे मे फसा रहता है नाना प्रकार की अन्याय और अनीति करता है, अभक्ष्य भोजन करता है योग्य अयोग्य के विचार से रहित हो जाता है, हिंसादि पाप को करते हुए सकुचाता नहीं। अपनी आत्मा का कल्याण चाहने वाले विवेकी पुरुषों को चाहिये कि मिथ्यात्व का त्याग करें और सम्यकदर्शन रूपी अमृत का पान करें। यह सच है—मिथ्यादृष्टि सदा दुखी—और सम्यग्दृष्टि सदा सुखी।

प्रश्नावली

१ मिथ्यात्व कितने प्रकार का होता है ? उनके नाम भी बताओ ?
२ एकान्त मिथ्यात्व किसे कहते हैं ? दृष्टान्त देकर समझाओ।
३ विनय मिथ्यात्व क्या होता है ? दृष्टान्त सहित बताओ।
४ संशय मिथ्यात्व से आप क्या समझते हैं ? दृष्टान्त भी दो।
५ विपरीत मिथ्यात्व और अज्ञान मिथ्यात्व से तुम क्या समझते हो ? कोई दृष्टान्त भी दो।
६ मिथ्यात्व से क्या हानियाँ जीव को होती है ?
७ 'मिथ्यादृष्टि सदा दुखी, सम्यक दृष्टि सदा सुखी' इसका अर्थ अपनी परिभाषा मे समझाओ।

जीवन की सार्थकता

लगभग अढ़ाई हजार वर्ष पहले की बात है। हमारे अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान का कल्याणकारी विहार हो रहा था। उनका समवशरण राजगृह के पास विपुलाचल पर्वत पर आया था। सम्राट् श्रेणिक भगवान के बड़े श्रद्धालु भक्त थे। जिनेन्द्र भगवान का शुभागमन सुनकर उन्होने नगर मे मंगल-भेरी दिलवाई और नगर निवासियो, सामन्तो तथा मंत्रियो से वेष्ठित, प्रभु की वंदना तथा पूजा के लिए वन की ओर चल दिये। समवशरण मे पहुँचकर भगवान के दर्शन वन्दना करके वहां बैठे और अवसर पाकर भगवान महावीर से बड़ी विनय पूर्वक प्रश्न किया—नाथ! आपने महान त्याग और आदर्श अनुष्ठान से मनुष्य जीवन की सार्थकता का उपाय बता दिया है। आप पुरुषसिंह हैं, महावीर हैं, निर्ग्रन्थ मार्ग के सर्वश्रेष्ठ पथिक है, परन्तु नाथ! हम जैसे भीरु और कायर गृहस्थ इतने साहसी नही कि एकदम मुनि अथवा आर्यिका हो जावें। अतएव नाथ! हमें भी मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने के लिये कोई सुगम मार्ग बताइये।

महाराज श्रेणिक के पूछने पर भगवान की दिव्य

ध्वनि हुई जिसे गौतम गणधर महाराज ने ग्रहण किया और संसार के अन्य जीवो के कल्याण के निमित्त द्वादशाग रूप मे सूत्र बद्ध प्रगट किया। गुरु परम्परा से भगवान की वह दिव्य वाणी आज भी मिल रही है। श्रीगौतम गणधर देव ने महाराज श्रेणिक के प्रश्न करने पर नीचे लिखी कथा कही।

'भद्रपुर मे जिनचन्द्र नाम का राजा राज्य करता था। वह बडा ही दानवीर और प्रतापी था। जिनदत्ता और जिनमती नाम की उसकी दो रानियाँ थी। जिनदत्ता के सूरदत्त और जिनमती के जिनदत्त नाम के पुत्र हुए।

सूरदत्त बलवान और शस्त्र-विद्या मे विशेष निपुण था। जिनदत्त अश्व-विद्या खूब जानता था, परन्तु भोगो से विरक्त था। जिनचंद्र सुख से शासन कर रहा था कि अचानक म्लेच्छो ने उस पर आक्रमण कर दिया। राजा ने जिनदत्त को म्लेच्छो से मोरचा लेने के लिए भेजा, परन्तु म्लेच्छो ने उसकी सेना को नष्ट कर दिया। वह लौटकर भद्रपुर आया।

इस पर सूरदत्त म्लेच्छो को मार भगाने के लिए गया। वह पराक्रमी शूरवीर था। म्लेच्छ उसके सामने टिक नही सके वह हार गये। सूरदत्त विजयी होकर भद्रपुर लौटा। राजा और प्रजा ने उसका सम्मान

किया। राजा ने उसे युवराज बनाया। सब लोग कहने लगे कि सूरदत्त के समान कोई शूरवीर नहीं है।

विवेकी जिनदत्त से चुप न रहा गया। यह सुनकर वह कहने लगा कि 'म्लेच्छो के जीतने में क्या बहादुरी है। वही मनुष्य सच्चा शूरवीर है जो क्रोध, मान, माया, लोभ, मद और काम-रूपी छह शत्रुओं को जीतता है, घोर परीषहो को समभाव से सहता है, वही महाशीलवान पुरुष पुंगव अपनी आत्मा का हित करने के लिये तत्पर रहता है और लोक का कल्याण करता है, वह यथार्थ मे शूर है।' जिनदत्त का कहना सूरदत्त के मन भा गया। वह विरागी हो गया और श्रीधर मुनिराज के पास जाकर उसने जिनदीक्षा लेली।

सूरदत्त ने जिस प्रकार संग्राम मे अपने भुजबल और वीरता का परिचय देकर विजय प्राप्त की, वैसे ही उन्होंने धर्म मार्ग में घोर तप तपा और मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त किया—अपने आत्म कल्याण के लिये उन्होंने सम्यक् दर्शन, ज्ञान चारित्र और तप की आराधना की और अपने मनुष्य जीवन को सार्थक बनाया।

श्रेणिक! मनुष्य जन्म पाने का यही सुफल है। दुनिया के धन्धे में सफलता पाना गृहस्थ का कर्तव्य है अवश्य, परन्तु मनुष्य जीवन की सार्थकता आत्म-कल्याण करने मे होती है। अपनी आत्म शक्ति के

अनुसार सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्रमई रत्नत्रय धर्म की आराधना करनी चाहिये। यह जरूरी नहीं कि मुनिपद धारण करके ही उसकी आराधना करो, घर में रहकर भी धर्म की आराधना हो सकती है, परन्तु विरक्त परिणाम होना चाहिए। अपने हित और अहित को पहिचानने की दृष्टि होनी चाहिए। बिना विवेक के न मुनि और न गृहस्थ अपना कल्याण कर सकता है। भरत महाराज घर मे ही वैरागी थे। धन और ऐश्वर्य मे अन्धे नहीं हुए थे। जीवन का ध्येय केवल रुपया कमाना नहीं है—यह नाशवान है--छाया है। छाया अपने आप पीछे चलेगी, आप केवल धर्म की आराधना कीजिये। कर्मवीर भी बनिये और धर्मवीर भी, सत्य है:—

'जे कम्पे सूरा—ते धम्मे सूरा'

दो०—धर्म करत ससार सुख, धर्म करत निर्वाण।
धर्म-पंथ साधे बिना, नर तिर्यंच समान॥

(बा० कामताप्रसाद जैन)

प्रश्नावली

१ दिव्यध्वनि, द्वादशांग और विहार से तुम क्या समझते हो?
२ सूरदत्त और जिनदत्त की कथा अपनी सरल भाषा मे सुनाओ
३ सच्चा धर्मवीर कौन है?
४ इस कथा से आपको क्या शिक्षा मिलती है?
५ 'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा' इसका अर्थ समझाओ।
६ अन्तिम दोहा सुनाओ और उसका अर्थ बताओ।
७ मनुष्य जन्म सफल कैसे होता है?

व्यवहार सम्यग्दर्शन

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन तत्वों के श्रद्धान को व्यवहार सम्यग्दर्शन बताया है—इन सात तत्वों का स्वरूप चौथे भाग में आप पढ़ चुके हैं, प्रसङ्ग वश यहाँ संक्षेप से कुछ बता देना अनुचित न होगा।

(१) जीवतत्त्व—चेतना लक्षण जीव है—जीव तीन प्रकार के होते हैं वहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा।

(अ) वहिरात्मा—मिथ्यादृष्टि जीव जो शरीर आत्मा को एक ही गिनते हैं जो तत्वों के स्वरूप को जानते ही नहीं जिनकी इच्छाएँ बलवती होती जाती हैं, जो विषय चाह की अग्नि मे रात दिन जलते रहते हैं, जो अपनी आत्म शक्ति को खो बठते हैं और जो मोक्ष के अविनाशी अविकारी सुख के खोज के लिए कोई प्रयत्न ही नहीं करते 'वहिरात्मा' हैं।

(आ) अन्तरात्मा— जो आत्मा को जानते हैं, आपापर के भेद को जानते हैं और समझते हैं ऐसे भेद ज्ञानी सम्यग्दृष्टि 'अन्तरात्मा' कहलाते हैं। ये अन्तरात्मा भी तीन प्रकार के होते हैं।

(क) उत्तम अन्तरात्मा—अन्तरंग और वहिरंग के २४

प्रकार के परिग्रह से रहित शुद्ध परिणामी आत्मध्यानी मुनि उत्तम अन्तरात्मा है।

(ख) मध्यम अन्तरात्मा—देशव्रती गृहस्थ और छठे गुण स्थानवर्ती मुनि अन्तरात्मा है।

(ग) जघन्य अन्तरात्मा—व्रत रहित चौथे गुण स्थान वर्ती सम्यग्दृष्टि जघन्य अन्तरात्मा है।

(इ) परमात्मा—अत्यन्त विशुद्ध आत्मा को परमात्म कहते हैं—परमात्मा के दो भेद हैं:—एक सकल परमात्मा, दूसरे निकल परमात्मा, जिन्होंने चार घातिया कर्मों का नाश कर दिया है, जो लोकालोक का देखने वाले हैं ऐसे सर्वज्ञ, वीत राग परम हितोपदेशी आत्माओं को 'सकल पर· त्मा या अरहन्त कहते हैं।

आत्मा का हित सुख पाने मे है, सुख उसे कहते हैं जिसमे आकुलता अर्थात् किसी प्रकार की भी कोई चिन्ता न हो—आकुलता मोक्ष मे नहीं है। संसार मे तो सब ही जगह आकुलता पाई जाती है। इसलिए सुख के चाहने वालो को मोक्ष के मार्ग पर चलना चाहिए। मोक्षमार्ग सम्यक्दर्शन और सम्यक्चारित्र रूप है। इन तीनो के स्वरूप का विचार दो तरह से करना चाहिए एक तो निश्चय रत्नत्रय रूप से, यह तो ठीक-ठीक सच्चा स्वरूप है, दूसरा व्यवहाररूप से यह

व्यवहार मोक्ष मार्ग निश्चय मोक्ष मार्ग के पाने का कारण है।

पर अर्थात् अन्य द्रव्यों से आत्मा को जुदा जानकर शुद्ध आत्मा के सच्चे स्वरूप में श्रद्धान करना 'निश्चय सम्यकदर्शन' है।

शुद्ध आत्मा के स्वरूप का विशेष ज्ञान होना 'निश्चय सम्यक्ज्ञान' है।

शुद्ध आत्मा के स्वभाव मे रमण करना अर्थात् एक चित्त हो लीन तथा तन्मय हो जाना 'निश्चय सम्यक्चारित्र है।

निश्चय मोक्षमार्ग को प्राप्त करतेमें व्यवहार मोक्षमार्ग कारण है। जिनके द्वारा निश्चय रत्नत्रय का लाभ हो उनको व्यवहार रत्नत्रय कहते हैं। जीव, अजीव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वों के श्रद्धान को श्रद्धन को या इनमें पुण्य और पाप को मिलाकर नौ पदार्थों के यथार्थ श्रद्धान को 'व्यवहार सम्यग्दर्शन' कहते हैं। सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु के श्रद्धान को भी सम्यग्दर्शन कहते हैं, जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए आगम के ज्ञान को 'व्यवहार सम्यक्ज्ञान' कहते हैं और अशुभ मार्ग की निवृत्ति तथा शुभ-मार्ग की प्रवृत्ति 'व्यवहार सम्यक्चारित्र' है।

अब यहाँ पर पहले व्यवहार सम्यग्दर्शन का वर्णन करते हैं:—

जिन्होंने ज्ञानावरणादि अष्ट द्रव्य-कर्म, राग द्वेष क्रोधादि भाव-कर्म और शरीरादि नौ कर्म इन तीनों प्रकार के कर्मों का नाश कर दिया है, ज्ञान ही जिनका शरीर है जो लोक के अग्रभाग मे स्थित है, जो अनन्त काल तक आत्मा के स्वाधीन, निराकुल सुख का निरन्तर अनुभव करते रहते हैं—ऐसे परमात्माओ को 'कृतकृत्य' निकल परमात्मा या सिद्ध कहते हैं।

इनमे से बहिरात्मपने का त्याग कर अन्तरात्मा बन सदैव दोनो प्रकार के परमात्मा अरहंत और सिद्ध की सेवा करना योग्य है। इससे ही निरन्तर अनादि की प्राप्ति हो सकेगी।

(२) अजीवतत्व—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पॉच चेतना रहित अजीव द्रव्य हैं। इनमें से पुद्गल मूर्तीक है क्योकि इसमे स्पर्श, रस, वर्ण, गंध, गुण पाये जाते हैं, बाकी चार द्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश और काल अमूर्तिक हैं।

धर्मद्रव्य—जीव और पुद्गल को चलने मे उदासीन रूप से सहकारी है। 'अधर्म-द्रव्य चलते हुए जीव और पुद्गल के ठहरने मे उदासीनरूप से सहकारी होता है।

आकाश द्रव्य इसमे जीवादि द्रव्यो को अवकाश देने की योग्यता होती है इसके दो भेद हैं। लोकाकाश और अलोकाकाश-धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव

हद तक आकाश मे पाये जाते हैं उसे 'लोकाकाश' कहते हैं, उससे बाहम को 'अलोकाकाश' कहते है।

कालद्रव्य—इसके दो भेद है—एक निश्चय काल और व्यवहार काल।

निश्चयकाल--का कार्य सब द्रव्यों मे परिवर्तन होने में सहायता करने का है।

समय, घड़ी, पहर, दिन महीना और वर्ष आदि को 'व्यवहार-काल' कहते हैं।

'इन छहो द्रव्यों मे से जोव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश यह पाँच तो बहुप्रदेशी होने के कारण 'पंचास्तिकाय' कहलाते हैं। काल के एक ही प्रदेश होता है इस कारण वह काय नहीं है।

(३) आस्रवतत्व—कर्म वर्गणाओ के खिचकर आत्मा के पास आने को तथा कर्मों के आने के कारण को आस्रव कहते है—मिथ्यात्व, अवरति, प्रमाद योग कषाय कर्म आस्रव के प्रबल कारण हैं।

(४) बंधत्व—कर्मों के आत्मा के साथ बँधने के कारण को तथा आये हुए कर्मों के आत्मा के साथ बंध जाने को बन्ध तत्व कहते हैं।

(५) संवरतत्व—कर्मों के आने के कारण को

तथा आते हुये कर्मों के रुक जाने को संवर कहते हैं।

(६) निर्जरातत्व—कर्मों के झड़ने के कारण को तथा कर्मों के झड़ने को निर्जरा कहते हैं।

(७) मोक्षतत्व सर्व कर्मों के छूट जाने के कारण को व आत्मा के कर्मों से पृथक् हो जाने को मोक्ष कहते हैं। यह जगत जीव और अजीव अर्थात् जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्यों का समुदाय है। पुद्गलों में सूक्ष्म-जाति की कर्म वर्गणायें है या कर्म-स्कन्ध है, उन्हीं के संयोग से आत्मा अशुद्ध है। आस्रव और बन्ध तत्व अशुद्धता के कारणों को बताते हैं। संवर अशुद्धता को रोकने का व निर्जरा अशुद्धता के दूर होने का उपाय बताते हैं। मोक्ष बन्ध रहित तथा शुद्ध अवस्था का नाम हैं। ये सात तत्व बड़े उपयोगी हैं। इनके स्वरूप को ठीक ठीक जाने विना आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता—इन्हीं का सच्चा श्रद्धान व्यवहार सम्यक्दर्शन है। इन ही के मनन से निश्चय सम्यक्-दर्शन होता है। इसलिये ये निश्चय सम्यक्दर्शन के होने में बाहिरी निमित्त कारण हैं। अंतरंग निमित्तिकारण अनन्तानुबन्धी चार कषाय और मिथ्यात्व कर्म का उपशम होना या दबना है।

इन्हीं सातों तत्वों मे पाप पुण्य दोनों को और मिला देने से नौ पदार्थ हो जाते हैं।

ऊपर सात तत्वों का श्रद्धान व्यवहार सम्य

दर्शन बताया गया है। निर्दोष बाधारहित आगम के उपदेश बिना सप्ततत्वों का श्रद्धान कैसे हो सकता है? और निर्दोष आप्त अर्थात् देव के बिना सच्चा आगम कैसे प्रकट हो सकता है? सच्चे देव के कहे हुए तथा सच्चे आगम के द्वारा प्रगट२ धर्ममार्ग पर साक्षात आप चलकर आत्मकल्याण का मार्ग असली तौर पर सच्चे निर्ग्रन्थ गुरु बिना और कौन दिखा सकता है? इसी कारण सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु का श्रद्धान गो व्यवहार सम्यक् दर्शन है। देव, शास्त्र गुरु की सहायता से ही पदार्थों का ज्ञान होता है व्य-हार सम्यत्व का सेवन होता है।

सच्चा देव वही है जो वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो। इन तीनो गुणों के बिना देवपना हो नहीं सकता। जो देव आप ही दोषी हैं वे दूसरे जीवों को कैसे निराकुल, सुखी और निर्दोष बना सकते हैं। यह लक्षण अरहंत और सिद्ध परमात्मा में ही मिलते हैं। 'अरहंत भगवान' जीवन-मुक्त परमात्मा है। सर्व कर्म-मल रहित निकल परमात्मा 'सिद्ध भगवान' हैं, ये ही हमारे आदर्श हैं, नमूना हैं, जिनके समान हमें होना है। इसलिये इन्हीं को पूजनीय देव मान कर इन्हीं की भक्ति, पूजा, उपासना, स्तवन, गुणानुवाद करना चाहिये।

३६ और उसे भुला देने से बढ़कर दूसरी कोई बुराई भी नहीं है।

सच्चा शास्त्र वही है जिसका किसी वादी प्रति-वादी द्वारा खण्डन न किया जा सके। जो सच्चे देव अरहन्त परमेष्टी का कहा हुआ होवे, जिसमें पूर्वापर विरोध न हो, जो वस्तु के स्वभाव का यथार्थ उपदेश करने वाला हो, प्राणीमात्र का हितकारी हो, मिथ्या अर्थात् झूठे मार्ग का खडन करने वाला हो, ऐसे ही शास्त्र मे अज्ञान और कषाय के मेटने का उपदेश मिलता है, ऐसे ही शास्त्र की भक्ति करने से, स्वाध्याय करने से, सच्चे ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है। ऐसे ही शास्त्र अविनाशी, अविकार, परमानन्द का . . कराने का एकमात्र अमोघ उपाय हैं।

सच्चे गुरु वही हैं जो सच्चे देव के कहे हुए सच्चे शास्त्र के अनुसार चलकर महाव्रतो का पालन करते हुए अज्ञान और कषायो के मेटने का साधन करते हैं। सच्चे गुरु के विषयो की आशा नहीं होती। वे आरम्भ और परिग्रह रहित होते हैं, ज्ञान, ध्यान और तप में लवलीन होते हैं, सच्चे गुरु तारण-तरण होते हैं, तत्त्व लाखों प्रयत्न करने पर भी समझ में न आवे, गुरु महाराज उसको बात की बात में सुगमता के साथ समझा देते हैं, गुरु की शरण मे बैठने से आचरण की शुद्धि होती है। उनकी शान्त मुद्रा तथा उनके हितो-पदेश का अन्य जीवो पर बड़ा ही असर पड़ता है।

लिये गुरु महाराज की संगति करके ज्ञान का लाभ उठाना चाहिये, उनकी सेवा, वैय्यावृत्य करके अपने को सफल मानना चाहिये।

इस प्रकार इन सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्र का श्रद्धान करना व्यवहार सम्यक्-दर्शन का कारण है। सम्यक्दर्शन का पालन आठ दोष, आठ मद तीन मूढता और छः अनायतन ऐसे पच्चीस दोष न लगाकर निर्मलता से करना चाहिए।

सम्यक्त्व तीन प्रकार का होता है उपशम सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और क्षायक सम्यक्त्व। मिथ्यात्व का उपशम होकर सम्यक्त्व होना उपशम सम्यक्त्व है और मिथ्यात्व क्षय होने से सम्यक्त्व का होना क्षायक सम्यक्त्व है। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में यद्यपि सम्यक्त्व होता है, परन्तु मिथ्यात्व की झलक होने के कारण मल सहित होता है इसको वेदक या क्षयोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। इस सम्यक्त्व में चल, मल और अगाढ ये तीन प्रकार के दोष होते हैं। सम्यक्-दर्शन मोक्ष-रूपी महल में चढने की पहली सीढ़ी है, इसके बिना ज्ञान और चारित्र सम्यक्पने को प्राप्त नहीं होते। जैसे भी बने शास्त्र स्वाध्याय द्वारा अथवा सत्संगति द्वारा सच्चे देव, शास्त्र और गुरु का तथा

धर्म का समस्त सार बस एक इसी उपदेश मे समाया हुआ

सात तत्त्वों का स्वरूप समझकर सम्यक्दर्शन रूपी ,,
से अपने आत्मा को पवित्र करना चाहिये ।

(छप्पय छन्द)

छहों द्रव्य नव तत्व, भेद जाके सब जानै ।
दोष अठारह रहित, देव ताको परमानें ॥
संयम सहित सुसाधु, होय निरग्रथ विरागी ।
मति अविरोधी ग्रंथ, नाहि माने परत्यागी ॥
वर केवल भाषित धर्म धर, गुण थानक बूझें मरम
'भैया' निहार व्यवहार यह, सम्यक लक्षण जिनधर्म

प्रश्नावली

१ सम्यक् दर्शन किसे कहते हैं ?
२ व्यवहार सम्यक् दर्शन से तुम क्या समझते हो ?
३. तत्व कितने हैं ? उनके नाम बताओ—प्रत्येक का स्वरूप भी समझाओ ।
४. आत्मा कै प्रकार की होती हैं ?
५ बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का स्वरूप समझाओ
६ परमात्मा के कितने भेद हैं, और कौन २ से ?
७ व्यवहार सम्यक्दर्शन और निश्चय सम्यक्दर्शन मे क्या भेद है ?
८. व्यवहार सम्यक् ज्ञान और निश्चय सम्यक् ज्ञान मे अन्तर है ?

९ व्यवहार सम्यक् चारित्र और निश्चय सम्यक चारित्र मे क्या अन्तर है ?
१० व्यवहार मोक्षमार्ग और निश्चय मोक्षमार्ग मे क्या अन्तर है ?
११ द्रव्य कितने हैं ? उनके नाम बताओ और संक्षेप मे प्रत्येक का स्वरूप समझाओ ।
१२ व्यवहार और निश्चय काल मे क्या अन्तर है ?
१३ सच्चा देव किसे कहते हैं ?
१४ सच्चे गुरु के लक्षण बताओ ।
१५ सच्चा शास्त्र किसे कहते हैं ?
१६ सम्यक्त्व कै प्रकार का होता है ?
१७ उपशम सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व से तुम क्या समझते हो ?
१८. चल, मल और अगाढ दोष क्या होते है ?
१९ द्रव्य कितने हैं, उनके नाम बताओ। प्रत्येक का स्वरूप समझाओ ।
२० अस्तिकाय किसे कहते हैं ? कौन-कौन द्रव्य अस्तिकाय हैं और कौन कौन नहीं ?

— ० —

सम्यक्त्व के आठ अंग

जैसे शरीर के आठ अङ्ग होते हैं—मस्तक, पेट, पीठ, दो भुजायें, दो टाँगें, एक कमर । यदि इनको जुदा-जुदा कर दिया जावे तो शरीर नहीं रहता, इसी तरह सम्यक्त्व के आठ अङ्ग होते हैं, यदि ये न हो तो सम्यक्त्व पूर्ण नहीं होता ।

(१) निःशंकित अंग—जिन भगवान के कहे वचनो मे सशय न करना निशंकित अंग है। जिन सात तत्वों की श्रद्धा करके सम्यक्त्वी हुआ है उन पर कभी शङ्का नहीं लाना—जो जानने योग्य बातें अपनी समझ मे नही आवें और जिनागम में बताई गई हैं, उन पर सम्यक्त्वी अश्रद्धान नहीं करता, उनको विशेष ज्ञानी से पूछने और समझने का उद्यम करता है। सम्यक्दृष्टी निर्भय होता है, वह अपने श्रद्धान में सदैव दृढ़ और निश्चल रहता है। सात भय ये हैं—इस लोक भय, परलोक भय, वेदना भय, अरक्षा भय, अगुप्ति भय, अकस्मात भय और मरण भय।

(२) निःकांक्षित अंग—धर्म सेवन करके संसार के इन्द्रिय जनित सुखो की इच्छा नही करना। सम्यक् दृष्टि सांसारिक सुख को और भोगो को पराधीन, दुःख का मूल आकुलता पैदा करने वाला, तृष्णा को बढ़ाने वाला और पाप-कर्म का बन्ध करने वाला समझता है।

(३) निर्विचिकित्सा अंग—मुनिराज या अन्य धर्मात्मा के शरीर को मैला देख कर घृणा नहीं करना। सम्यक्दृष्टि जीव किसी जीव को दुखी, दरिद्री, अपवित्र, कुचेष्टावान् आदिक अवस्था में देख कर उस से ग्लानि नहीं करता है। यह समझता है यह सब कर्म जनित है,

संसार की अपवित्र और घिनावली वस्तु को देखकर घृणा नहीं करता। यही विचारता है कि इन वस्तुओं का स्वभाव ही ऐसा है, इनसे घृणा कैसी? गन्दे मलीन को देख कर उनसे घृणा नहीं करता, उनको साफ रहने के लिये प्रेरणा करता है, उनके लिए साफ रहने के साधन जुटा देता है। इस अंग के पालन करने वाला सम्यक्-दृष्टि अपने गुणो को डींग नहीं मारता, अपनी प्रशंसा नहीं करता, दूसरो को हीन नहीं समझता, विचारता है कि संसारी जीवों मे जो भेद हैं वे सब कर्म जनित है। वास्तव मे सब ही आत्माएँ समान हैं, उनमे कोई भेद द्रव्य दृष्टि से नहीं है। दुखी, दरिद्र, रोगी प्राणियो पर दया-भाव रख उनके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करता है। रोगियो की सेवा करता है, उनके मल मूत्र, कफ आदिके उठाने मे ग्लानि नहीं करता है। उनके क्लेश मिटाने के लिये भरसक प्रयत्न करता है। जिसके निर्विचिकित्सा अंग है, उसी के दया है, उसी के अहिंसा है, उसी के वात्सल्य है, और उसी के वैया-वृत्य होता है

(४) अमूढ-दृष्टि अंग—खोटे खरे तत्व की पहचान कर मूढता की ओर नहीं जाना अमूढ-दृष्टि अंग है। सम्यक्दृष्टि बे सोचे, बिना समझे, बिना

परीक्षा कि अन्धे की तरह लोगों को देखा
मिथ्यात्व के बढ़ाने वाली निरर्थक क्रियाओं को
मानकर नहीं पालता है। प्रत्येक धर्म क्रिया को ।
पूर्वक विचार कर ही करता है, जो रत्नत्रय के
कार्य हैं, उन्हीं को करता है। मूढ बुद्धि को
त्याग देता है। लोभ से, भय से, आशा से तथा
से किसी प्रकार भी कुदेव, कुगुरु, कुधर्म तथा
मानने वालों को भक्ति भाव से प्रणाम नहीं करता,
उनकी विनय और प्रशंसा नहीं करता।

(५) उपगूहन अंग—पराये दोषों को ढांकना उपगूहन है। यदि किसी समय में किसी धर्मात्मा से उसके अज्ञान से या उसकी कमजोरी से कोई दोष बन जाता है तो सम्यक्दृष्टि इस ख्याल से कि यदि यह दोष प्रगट हो गया तो धर्म की निन्दा होगी, धर्मात्माओं को लोग दूषण लगावेंगे. प्रभु के निर्दोष मार्ग की निन्दा होगी, धर्म से सच्ची प्रीति रखते हुए धर्म को अपवाद से बचाने के लिये उसके दोष को छिपाता है। ऐसी दशा मे करुणा बुद्धि धारण कर उसका यथायोग्य सुधार करना ही अपना कर्तव्य समझता है।

(६) स्थितिकरण अंग—किसी समय मे यदि कोई धर्मात्मा खोटी संगति से, रोग के कारण से, दरिद्रता से, मिथ्या उपदेश से या अन्य किसी कारण

से गिरता हो तो धर्म प्रेमी सम्यक्दृष्टि उसको जैसा भी बने धर्म मे स्थिर कर देता है, यह स्थितिकरण अङ्ग है। इस अंग का पालक अपने आत्मा को सदा धर्म में स्थिर रहने की प्रेरणा करता रहता है।-

(७) वात्सल्य अंग—जैसे गऊ अपने बच्चे से प्रीति करती है, वैसी धर्मात्मा से प्रीति करना वात्सल्य अंग है। जिसके अहिंसा से प्रीति होती है, जो सत्य और सत्यवादियो का उपासक है, जिसको सच्चे धर्म से प्रेम है, जो धन और पर-स्त्री की लालसा नहीं रखता है। उसी के वात्सल्य होता है। जिसके हृदय में धर्म और धर्मात्माओं के प्रति अनुराग है जो त्यागी, तपस्वी, सन्यासी धर्मात्माओ के साथ बड़े आदर पूर्वक व्यवहार करता है उसके वात्सल्य होता है इस अंग का पालन करने वाला सम्यक्दृष्टि अन्य धर्म वालो से द्वेष नहीं करता है। उन पर भी दया-भाव रखता है और उनके प्रति मध्यस्थ रहता है। किसी प्रकार भी उससे शत्रुता का भाव नहीं करता है। उनका बिगाड़ नहीं चाहता, उनके धर्म स्थान, देवालय, मठ आदि को नष्ट भ्रष्ट नही करना चाहता। विचारता है कि जिसको जैसा सम्यक् या मिथ्या उपदेश मिलता है वैसी ही उसकी प्रवृत्ति हुआ करतो है। समस्त प्राणियों के लिये उसके मैत्री-भाव होता है, उसको किसी से

बैर भाव नहीं होता, गुणवानों के लिये उसके दिल में हर्ष होता है, दीन दुखी जीवों के लिये उसके हृदय में करुणा होती है और विरोधियो की ओर वह मध्यस्थ रहता है। इस अंग का धारक, धर्म और धर्मात्माओं के प्रति प्रेम-भाव रखते हुए उनके दुखों को मिटाने का भरसक प्रयत्न और उद्यम किया करता है।

प्रभावना अंग— जिस प्रकार भी बने जैनधर्म की उन्नति करना और ऐसे कार्य करना कि जिनके करने से संसार के सब जीवों पर धर्म का प्रभाव पड़े।

जैन धर्म की प्रभावना दान देने से, घोर दुर्द्धर तपश्चरण करने से, शील संयम पालने से, निर्लोभता से, विनय से, हर्ष तथा उत्साह पूर्वक जिनेन्द्र प्रभु के अभिषेक पूजन करने से तथा तत्वो का प्रचार करने से, साधारण जनता में से ज्ञान प्रचार द्वारा अज्ञान-अन्धकार को मिटा देने से, परोपकार से बढ़ती है, सम्यक्-दृष्टि इन सब कारण का जुटाने के लिये भर-सक प्रयत्न किया करता है, वह चाहता है कि जैनियों के निर्मल आचरण, दान, तप, शील, भावना, विनय, क्षमा, दया, अहिंसा, भक्ति, श्रद्धान उनकी विद्वता, निष्कपटता, निर्भीकता, मैत्रीभाव, सहनशीलता, करुणा और परोपकार भाव इत्यादि गुणों को देखकर दूसरे धर्म वाले भी प्रशंसा करें और कह उठें कि धन्य है.

इनके धर्म को, इनके आचरण को, इनके स्वार्थत्याग को, प्राण जाते हुए भी यह अपने नियम व्रत को भंग नहीं करते, इन का जीवन अनुकरणीय है।' इसी का नाम प्रभावना है। इस अंग का पालक धर्म की उन्नति करने का निरंतर प्रयत्न करना अपना कर्त्तव्य समझता है; जिस प्रकार भी बने और भी लोग सत्य धर्म से प्रभावित होकर सत्य को ग्रहण करें ऐसा उद्यम सदैव करता कराता रहता है।

इन आठो अङ्गो के समुदाय का नाम ही सम्यक्-दर्शन है। अंगी अंगो से जुदा नहीं हुआ करता, अंगो के समूह की एकता ही तो अंगी है। इन गुणों से उल्टे शंकादिक आठ दोष हैं, जो २५ दोषों मे गर्भित हैं। उन्हें दूर करके सम्यक्-दर्शन को निर्मल बनाना चाहिये।

(सवैया ३१)

धर्म मे न संशय, शुभ कर्म फल की न इच्छा,
अशुभ को देख न गिलानी आवे चित्त मे।
सांचो दृष्टि राखें काहू प्राणी का न दोष आंखें,
चंचलता भानि थिति ठाणे बोध चित्त मे॥
प्यार निजरूप से उच्छाह की तरंग उठे,
यह आठो अंग जब जागे समकित में।
ताहि समकित को धरे सो समकितवंत,
वेही मोक्ष पावें और न आवे फिर इत मे॥

प्रश्नावली

१ सम्यक्त्व के कितने अङ्ग होते हैं ? नाम बताओ।
२ नि शकित अङ्ग किसे कहते हैं ?
३. नि.काक्षित अङ्ग से आप क्या समझते हैं ?
४ निर्विचिकित्सा अङ्ग से आप क्या समझते हैं ?
५ अमूढदृष्टि तथा उपगूहन अङ्ग का स्वरूप समझाओ।
६ स्थितिकरण से आप क्या समझते हो ?
७ वात्सल्य अङ्ग पर एक छोटा सा लेख लिखो।
८ प्रभावना किसे कहते हैं ? सच्ची प्रभावना काहे मे है ?
९ सच्ची प्रभावना के कुछ उपाय सुनाओ।
१० सम्यक्त्व के २५ दूषण कौन से हैं ? उन के नाम बताओ।

— ० —

सम्यक्दृष्टि निर्भय होता है

सम्यक्दृष्टि निर्भय होता है। जिसको तत्वों मे पूर्ण श्रद्धान होता है और ससार के सर्व प्रकार के दुःख सुख को कर्म जनित जानता है और सासारिक दुःख सुख को अपने से परे समझता है तो उसको भय ही किस बात का होवे, उस को भय तो तब हो, जब पर पदार्थों को अपना समझता हो, वह तो अपने श्रद्धान मे अडिग होता है। एक सच्चे वीर योद्धा की तरह वह कठिनाइयो को चीरता हुआ अपने ध्येय की ओर आगे बढ़ता चला जाता है अपने निश्चित मार्ग से

पीछे हटता नहीं। भय सात प्रकार का होता है।

इस लोक का भय—सम्यक्दृष्टि के इस लोक का कोई भी भय नहीं होता। वह धन-संपदा, शरीर, स्त्री, पुत्र, धन-धान्य राज्य आदि को अपने से बिलकुल जुदा जानता और देखता है—वह समझता है कि कर्म के उदय से इनका संयोग है, और कर्म के उदय से ही इनका वियोग भी अवश्य होगा। जो जन्मता है उसका नाश भी अवश्य होता है। वह तो अपने को समझता है मै ज्ञान स्वरूप हूँ, अविनाशी हूँ, अजर अमर हूँ, शुद्ध चेतना स्वभाव का धारक हूँ। उसका ऐसा दृढ़ श्रद्धान है, वह अपने निश्चित मार्ग पर एक सच्चे योद्धा की तरह डटा रहता है।

परलोक-भय—सम्यक्दृष्टि के इस बात का भय नहीं होता कि मरने के बाद मेरा क्या बनेगा, मै कहाँ किस क्षेत्र मे जन्म लूंगा, दुखी होऊंगा या सुखी—वह अपने किए हुए कर्मों का फल भोगने से घबराता नहीं, वह विषयो का लोलुपी नहीं होता। अपने कर्मोदय पर सतोष रखता हुआ परलोक की चिन्ताओ का जरा सा भी भय अपने दिल मे नहीं मानता।

मरण-भय—सम्यक्दृष्टि मृत्यु से डरता नहीं वह तो मरण का चोला बदलने के समान जानता है, वह आत्मा को अजर अमर मानता है शरीर जड़ है अवश्य

एक रोज यह शरीर मुझसे छूटेगा, शरीर मुझसे है, मै चैतन्य अविनाशी हूँ । मृत्यु का मुकाबला भाव के साथ करने के लिए एक वीर योद्धा की हर समय तैयार रहता हैं । मौत के डर के मारे अपने नियत मार्ग से नहीं डिगता ।

वेदना-भय—रोग हो जाने पर सम्यक् दृष्टि राता नहीं, उससे डरता नहीं—समताभाव के साथ की निर्जरा का हेतु जान रोग की वेदना को सहन करता है—यथायोग्य इलाज करता कराता है । वह निरोग रहने का उपाय करता है, अपना खान-पान, आहार-विहार, निद्रा आदि क्रियाओं को बड़ी सावधानता से करता है । वह शरीर को आत्मा से भिन्न समझता है, विचारता है रोग तो शरीर मे है, आत्मा मे नहीं—यह रोग कर्म का भोग है, यदि ज्ञानपूर्वक शान्ति के साथ सहूँगा तो मैं सहूँगा संक्लेशित होने से आगे के लिए और नया कर्म बंध, जाएगा । ऐसा जान वह वेदना से डरता नहीं, परन्तु निरोग होने के लिये यथोचित उपाय अवश्य करता है ।

अनरक्षा-भय——सम्यक् दृष्टि के ऐसा विचार नहीं होता कि मेरा रक्षक संसार में कौन है । यदि वह अकेला कहीं परदेश मे, जंगल में या किसी और स्थान में होता है, कोई आपत्ति आ जाती है तो वह घबराता

नहीं, डरता नहीं। उसे अपने आत्मा के अजर अमरपने पर भरोसा होता है। उस समय में वह विचारता है मेरी आत्मा ही अपनी शरण आप है; न इसका कोई रक्षक है और न कोई इसका घातक है—व्यवहार में अरहन्त, सिद्ध, साधु तथा जिन भगवान का धर्म ही एक मात्र शरण है। निर्भय हुआ आपत्ति को धर्म भावना के साथ दृढता पूर्वक झेलता है।

अगुप्ति भय——सम्यक् दृष्टि के ऐसा भय नही आता कि हमारा माल खजाना लुट गया तो क्या होगा? चोर डाकू लक्ष्मी लूट कर ले गये तो क्या बनेगा? वह अपनी रक्षा का प्रबन्ध करता है, पूरा पूरा प्रयत्न करता है, परन्तु रहता निश्चित है। विचारता है हमारा कर्तव्य तो केवल उपाय करना है; यदि प्रबन्ध करते २ भी आसाता वेदनीय कर्म के उदय से हानि होती है तो होने। अधार काहे को होना? यदि पुण्य का उदय है तो हमारा प्रयत्न अवश्य सफल होगा, हानि क्यो होगी। पुण्य का उदय है तो लक्ष्मी बनी रहेगी; चोर डाकू वगैरह कुछ नहीं कर सकते, पुण्योदय ही यदि नहीं रहा तो लक्ष्मी चली जायेगी—लक्ष्मी जड है, मुझ से भिन्न है। मेरा शुद्ध चेतना रूप विभूति तो मेरे पास है, उसे तो कोई लूट नहीं सकता छू नहीं सकता, वहां किसी का प्रवेश ही नहीं।

अकस्मात् भय—सम्यक्दृष्टि के इस बात का भय

नहीं कि न मालूम किसी समय अचानक क्या हो जावे उसको इस बात का भय नहीं कि बिजली गिर गई क्या होगा, भूकम्प आगया तो क्या होगा, युद्ध हो रहे है बम्ब का गोला अचानक आ पड़ा तो क्या बनेगा इस प्रकार के खयाली भय उसके दिल मे नहीं आते प्रयत्न करता है नतीजे को कर्मोदय पर छोड़ देता है भयभीत नहीं होता। यदि कोई ऐसी दुर्घटना, रक्षा का प्रयत्न करते २ भी हो जाती है तो कर्म का फल समझ धैर्य तथा समता भाव के साथ उसे सहन करता है कायर नहीं होता।

इस प्रकार एक सम्यक्दृष्टि इन सब भयो से रहित होता है, निःशङ्क रहता है, उसे कोई भय छू नही पाता। वह आत्मबल का धनी विचारशील होता है, एक वीर योद्धा की तरह जीवन की कठिनाइयों को चीरता हुआ, अपने नियत मार्ग पर आगे बढ़ता हुआ अपने ध्येय की ओर सीधा चला जाता है।

प्रश्नावली

१ सम्यक्दृष्टि के भय होता है या नही ? यदि नही तो क्यो ?
२ भय कितने प्रकार का होता है ?
३ इस लोक भय और परलोक भय से तुम क्या समझते हो ?
४ मरण भय किसे कहते हैं ?

एक सम्यक्दृष्टि बीमार पड जाने पर अपना इलाज कराता है या नही ?

५. वेदना-भय क्या होता है ?

६ अगुप्ति भय किसे कहते है ?

७. अनरक्षा भय और अकस्मात् भय से आप क्या समझते हैं ?

८. आपत्ति के समय एक समयक्दृष्टि अपनी रक्षा के उपाय करता है या नही यदि करता है तो क्या समझ कर ?

९ नीचे लिखी हालतो मे सम्यक्दृष्टि क्या करता है और क्या नही ?

(क) पुत्र के सख्त बीमार होने पर।

(ख) गली मे भयानक मरी रोग के फैल जाने पर।

(ग) अकेला होते हुए किसी मुकदमे मे फँस जाने पर।

(घ) भूचाल आने पर, बाढ आ जाने पर, मार्ग मे जाते हुए डाकुओ के आजाने पर, युद्ध मे लडते २ शस्त्र द्वारा घायल होकर गिरते समय।

सम्यक्दृष्टि की निराभिमानता

संसारी जीव अनादि काल से मिथ्यात्व के उदय पर्याय बुद्धि हो रहा है। जाति, कुल, विद्या, बल, श्वर्य, रूप, तप, धन आदि को अपना आपा मान गर्व ाया करता है। वह अज्ञान से यह नहीं जानता कि सब कर्म के आधीन हैं, पुद्गल के विकार हैं, विना-ीक हैं, क्षण भंगुर हैं। सम्यक्दृष्टि समझता है कि ये ब मुझ से जुदा हैं, मेरा स्वरूप इन से भिन्न है, मैं

चेतना-स्वरूप हूँ, यह पर है, विनाशीक हैं, क्षणभंगु
इन का गर्व करना संसार भ्रमण का कारण है।
लिये सम्यक्दृष्टि किसी प्रकार का मद (घमंड)
किया करता है। मान करने से नीच गति का
होता है।

मद आठ बातों का होता है—जाति मद, कुल
विद्या मद, बल मद, ऐश्वर्य मद, रूप मद, तप
और धन मद।

जाति मदन—माता के पक्ष को जाति कहते
अपने नाना मामा के कुल का घमंड करना जाति
है। मेरी माँ बड़े ऊँचे कुल की है, मेरे नाना,
बड़े २ आदमी है, उन्होने बडे बडे कारज किये
बडे धनाढ्य है, चलती वाले हैं इत्यादि घमंड क
जाति मद है।

कुल मद— -पिता के वंश को कुल कहते
सम्यक्दृष्टि कुल का घमंड नही करता। वह तो वि
रता है कि जाति और कुल का क्या मान करूँ।
उच्च-जाति और कुल का होकर थोथा मान करता
नीच काम करता हूँ, निंद्य आचरण कर रहा हूँ
धिक्कार है मेरे जीवन को। कर्मोदय से यदि उ
जाति और कुल मिल भी गये तो मेरा कर्तव्य

क नीच व अधम आचरण का त्याग करूँ, विवेक से
ाम लूँ। कलह झगड़ा करना, मारन-ताड़न, गाली-
लौज, भंड वचन वोलना मुझे उचित नहीं। जुआ,
श्या सेवन, परधन हरना, हिंसा करना, अन्याय-अनीति
ा धन कमाना, उच्च-कुल और उच्च जाति वाले के
लये उचित नही। उच्च-कुल मे या जाति मे जन्म
लया तो मेरा यही कर्तव्य है कि हिंसा न करूँ, झूठ न
ोलूँ, चोरी न करूँ, छल-कपट न करूँ, मांस-मदिरा
का त्याग करूँ, जीव-दया पालूँ, परोपकार करूँ,
अपना आत्म कल्याण करूँ यही मेरा कर्त्तव्य है। ऐसे
ही सदाचार से उच्च-कुल और उच्च-जाति की शोभा
है। अनेक वार नाना प्रकार की उच्च व नीच जातियो
मे जन्म हुआ, अव मैं किसी को नीच-जाति का मान
काहे को मान करूँ? उच्च जाति मे जन्म ले काहे को
घमड करूँ। यह सव कर्मोदय जनित भेद हैं। मेरा
मान करना मुझे अपने आपको नीच वनाना है, मुझे
चाहिये कि अपने जीवन को क्षमा, स्वाध्याय, दान,
शील, विनय, परोपकार आदि सद्गुणो के द्वारा ऊँचा
बनाऊँ। वृथा जाति-कुल का मान करके अपने जीवन
को नष्ट करूँ।

बल मद—शरीर के बल का मद करना मद है।
सम्यक्दृष्टि बल का मद नहीं करता, वह विचारता है

कि यदि शारीरिक बल पाकर मैं निर्बलों का घात
गरीब कमजोरो के धन, धरती, स्त्री आदि का
करूँ, उनको छोटा समझ उनका अपमान और
स्कार करूं तो मेरे मे और सर्प सिंह आदि दुष्ट
जीवो मे क्या अन्तर रहा—अब पुण्योदय से यदि
बल है तो मेरा कर्त्तव्य है कि इससे दूसरो की
करूं, धर्म की रक्षा करूं, ब्रह्मचर्य का पालन करू,
उपवास शील संयम का पालन करूँ, तपश्चरण करू
यदि कोई कष्ट या आपत्ति आवे तो उसमें कायर
होऊँ। धैर्य के साथ सहन करूं, दीनता को पास
फटकने दूँ, दीन हीन असमर्थ जनों के दुष्ट वचनो
सुनकर उनसे बदला चुकाने की सामर्थ्य अपने मे
हुए भी उनको क्षमा करूं। अपने आत्मबल के द्वा
तपश्चरण कर, कर्मो को क्षय कर, मोक्ष के स्वाध
अविनाशी पद को प्राप्त करूं।

ऋद्धिमद—धन सपदा का घमड करना ऋद्धि
है। सम्यक्-दृष्टि धन-संपदा को अपने आत्म कल्य
के रास्ते मे एक बड़ी रुकावट समझता है। इसे रा
द्वेष, भय, मोह, संताप, शोक, क्लेश, बैर, हानि
प्रबल कारण समझता है। यह लक्ष्मी मनुष्य को मद
न्मत्त बनाने वाली है। वेश्या के समान चंचल है
इसका क्या पतियारा। आज नीच के घर है तो

ऊंच के है। सम्यक्दृष्टि इस पराधीन विनाशीक दुःख की कारण लक्ष्मी का गर्व नहीं करता, वह तो अपने आत्मा के अखंड ज्ञान को ही अपनी अटूट, स्वाधीन अविनाशी लक्ष्मी जानता है और भावना करता है कि कब इस विनाशीक लक्ष्मी को त्याग, गृह जंजाल से छूट, निर्ग्रंथ बन शिवलक्ष्मी को प्राप्त करू।

तप-मद—सम्यक्दृष्टि विचारता है तप का मद कैसा? तप का भी मद किया तो फिर तप क्यों किया—तप तो वहां है जहाँ क्रोध, मान, माया, लोभ नहीं, विकार परिणाम नहीं, आलस्य नहीं, प्रमाद नही, इच्छाओं के निरोध का नाम ही तप है, जब इच्छाएं बनी रहीं तो तप कहां? लालसा घटे नहीं, जीने की वांछा रही, मरने से डरता है, हानि-लाभ मे स्तुति-निन्दा में समता भाव हुआ नहीं फिर तप कैसा? तप तो वहां है जहाँ आत्म-ध्यान है, जहाँ शुद्धात्मा में तल्लीनता है—तप तो मेरे आत्म कल्याण का साधन है, इसका कैसा मान? जहाँ गर्व है वहाँ कर्म-बंध है जहाँ कर्म बध है, वहां आत्म-विकास कैसा? धन्य हैं वे महान पुरुष जिन्होने तप करके कर्मों को क्षय किया और परम वीतरागता को प्राप्त किया।

रूपमद—सम्यक्दृष्टि रूप का मद नहीं करता। रूप क्षण भंगुर है, पराधीन है, पुद्गल की पर्याय है, आत्मा का इससे क्या सम्बन्ध है, रूप का गर्व करना

व्यर्थ है। सुन्दर रूप को पाकर व्यभिचारी न बनना, शील मे दूषण नहीं लगाना, दीन हीन दरिद्री, लंगड़े लूले अङ्गहीन, मलिन मनुष्यो को देख कर उनसे ग्लानि नही करना, उनका तिरस्कार नहीं करना, उनका तिरस्कार नही करना, यह ही मेरा कर्त्तव्य है—ऐसा सम्यक्दृष्टि विचारता है—आज ससार मे अपने आपको गोरी कहने वाली जातियाँ रुप के मद मे मतवाली हो रही हैं; उससे जो जो हानियां उनकी अपनी और अन्य जातियो की हो रही है वे सब जानते है।

विद्या-मद—जो ज्ञान इन्द्रियो के आधीन है, वात, पित्त, कफ के आधीन है, दिल-दिमाग आदि के खराब हो जाने पर जो ज्ञान क्षणमात्र मे बिगड़ जाता है, उसका क्या गर्व करो, जो विद्या नाना प्रकार के घातक शस्त्रो द्वारा निर्दोष ग्राम, देश आदि के विध्वस कर डालने मे ही मनुष्यो को प्रवीण बनाती है, जो विद्या भोलेभाले जीवो को लूटने-मारने, प्राण हरने का पाठ पढ़ाती है, जो विद्या झूठे को सच्चा कर देने तथा सच्चे को झूठा कर देने में, दूसरो को बाधा पहु[illegible] से, सताने से, मनुष्यों को प्रवीण बनाती है, उस[illegible] क्या मान करें। यह विद्या संसार भ्रमण से हमें [illegible] नहीं सकती, हमारे अधिक पतन का कारण होती [illegible] ऐसा एक सम्यक्दृष्टि विचारता है। वह तो उस

का पुजारी है जो उसकी आत्मा मे भेद-विज्ञान जागृत कर देवें, जो उसके हीन आचरण को छुड़ा उसे उसके आत्म-कषाय से हटा परम समता की ओर ले जावे और संसार-भ्रमण से छूटने मे सहायक हो। जहां ऐसा ज्ञान होगा वहा मद नहीं होगा।

ऐश्वर्यमद—राज्यपद तथा हुकूमत का अभिमान करना ऐश्वर्य मद है—सम्यक्-दृष्टि ऐश्वर्य के नशे में चूर नहीं होना—ऐश्वर्य पाकर वह तो जीवो की सेवा तथा उपकार करना ही अपना कर्त्तव्य समझता है। वह विचारता है कि ऐश्वर्य पाकर निरभिमान रहना, बाधा रहित होना, न्याय करना, प्राणी मात्र से मैत्री भाव रखना, यथायोग्य छोटे बड़े सबका आदर-सत्कार करना मेरा कर्त्तव्य है। दूसरे जीवो को दीन-हीन पीडित देखकर तथा उनको दूर करने का प्रयत्न किया करता है। वह विचारता है यह एश्वर्य तो कर्माधीन है, क्षणभगुर है, इसका क्या गर्व करु ? मेरी अपनी आत्मा का ऐश्वर्य अविनाशी है, स्वाधीन है, अनंत शक्तिरुप है, मेरे लिए वही आदरणीय है।

इन आठों मदो पर विचार करके इनका त्याग करना ही श्रेष्ठ है—किसी न किसी तरह प्रत्येक मनुष्य इनके जाल में फंस जाता है और अपने लिये संसार

को बढ़ा लेता है। इनके फंदे में न फंस कर मन पर अंकुश रख तथा जीवन को सफल बनाता है।

प्रश्नावली

१ क्या सम्यक्दृष्टि वास्तव मे निर्मद होता है? होता है तो क्यो?

२ मद कै प्रकार का होता है? मदो के नाम गिनाओ।

३ कुल मद और जाति-मद से आप क्या समझते हैं?

४ एक धनाढ्य सेठ का पुत्र एक नीच कुल के मनुष्य को ठुकरा कर चलता है, क्या वह अच्छा करता है? यदि वह सम्यक्दृष्टि हो तो क्या करे?

५. बल मद से तुम क्या समझते हो? एक वलवान लडका अपने वल के कारण अपनी कक्षा के गरीव निर्वल लडकों को सताता है, दूसरा वलवान लडका उनको दुखी देखकर सहायता करता है और रक्षा करता है कौन सा अच्छा है? मद कौन से और कितने है?

६ ऋद्धिमद और तप मद किसे कहते हैं? उदाहरण देकर समझाओ?

७ रूप मद किसे कहते हैं? वहुत सी गोरी रग वाली जातियाँ अपने देशो मे अन्य काले रग वाली जाति वालो को नही घुसने देती अथवा अपने समान अधिकार नही देती, उनके मद है या नही, यदि है तो कौन सा मद है?

८- विद्या मद किसे कहते हैं? एक होशियार विद्यार्थी अपनी कक्षा के जरा कमजोर छात्रो से नाक भौं चढाता है। उनके साथ बैठना उठना पसन्द नही करता—क्या वह अच्छा करता है? उसका कौनसा मद है?

६. एश्वर्य मद से तुम क्या समझते हो? एक आनरेरी मजिस्ट्रेट अपने गरीब पडौसी के मकान को अपने मकान मे मिलाने के लिए बहुत कम कीमत पर अपने मजिस्ट्रेट होने का डर दिखाकर लेना चाहता है, क्या वह ठीक है? उसके मद है या नहीं, यदि है तो कौनसा?

१० मान में क्या हानि होती है।

तीन मूढ़ता और छह अनायतन

बे सोचे समझे, विना विचारे और परीक्षा किये बिना अन्धे की तरह लोगों के देखा देखो जिस प्रकार लोक में कोई प्रवृत्ति चल रही है, उसके अनुसार कुदेव कुगुरु, कुशास्त्र और कुधर्म को मानना, उनकी प्रशसा करना मूढ़ता है। सम्यक्त्वी इस प्रकार की मूढ़ता में नहीं फंसता वह तो विचार और परीक्षा के साथ ही धर्म की बातों को मानता है। मूढ़तायें तीन हैं—देव मूढ़ता, लोक मूढता और गुरु मूढता।

देव मूढता—विना विचारे लोगो की देखा देखी रागी द्वेषी देवो को मानकर पूजना और उनसे अपने संसारी कार्यों की सिद्धि मानना। देव मूढ़ता है।

लोक मूढ़ता—मिथ्यादृष्टियो की देखा देखी बिना बिचारे ग्रहण में पुण्य मानना, कुँआ पूजना, पीपल पूजना, किसी नदी में स्नान कर लेने मात्र से मुक्ति हो जाना, नाना रुप में पैसे की पूजा करना, दवात

कलम वहीखाते का पूजना, बालू रेत का ढेर लगाकर या कंकरियो का ढेर लगाकर पूजना, पर्वत से गिरकर प्राण खो देने मे मुक्ति मानना, काशी करौत लेना, जल कर सती होने मे धर्म मानना, इत्यादिक यह सब लोक मूढता के दृष्टान्त है। सम्यक्दृष्टि इस प्रकार की कोई क्रिया नहीं करता है, योग्य-अयोग्य, सत्य असत्य, हित-अहित का विचार करके विवेक पूर्वक करता है।

गुरु मूढता—भय से, लोभ से तथा आशा से रागी, द्वेषी, कामी, दम्भी, इन्द्रिय विषय लंपटी वेषधारी पाखंडी गुरुओ का मानना गुरु मूढता है। सम्यक्दृष्टि ऐसे गुरु की भक्ति उपासना कभी नही करता, वह तो परम ज्ञानी, परम ध्यानी, तपस्वी निर्ग्रन्थ गुरुओ की ही भक्ति, पूजा, वैयावृत्य आदि किया करता है। सम्यक्दृष्टि लोक प्रवृति का कुछ भी आश्रय नही लेता है, वह सब काम विचारपूर्वक ही किया करता है।

अनायतन—धर्म के आश्रय या स्थान को आयतन कहते हैं, खोटे आश्रय को अनायतन कहते है। अनायतन छह है 'खोटे गुरु' 'खोटे शास्त्र' और 'खोटे देव' का 'श्रद्धान या सेवन करने वाला' 'खोटे गुरु की भक्ति करने वाला' और 'खोटे शास्त्र का पढ़ने वाला'। ये

छह धर्म के आयतन नहीं हैं, अनायतन हैं। इनकी भक्ति से मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं होती। सम्यक्दृष्टि 'तीन मूढता' 'आठ मद' 'आठ शंकादिक दोष' 'छह अनायतन' इन पच्चीस दोषों को त्यागकर व्यवहार सम्यक्दर्शन को धारण करके निश्चय सम्यक्दर्शन को प्राप्त करता है। जिसके ऊपर लिखे पच्चीस दोष रहित शुद्ध आत्मा का श्रद्धा भाव होता है, उसी ही के नियम पूर्वक निश्चय सम्यक् दर्शन होता है। जिसका व्यवहार सम्यक्त्व ही दूषित है उनके निश्चय सम्यक्त्व कैसे शुद्ध हो सकता है।

एक अविरत सम्यक्दृष्टि भी जहाँ तक उसका वश चलता है कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र तथा कुधर्म को नमस्कार नहीं करता। अन्य व्यवहारियो की लौकिक रीति अनुसार यथायोग्य विनय, सत्कार जरूर करता है, यदि कोई उस पर जबरदस्ती जोरावरी करता है तो वह देश को छोड़ना, आजीविका को छोड़ देना, धन को त्याग देना इत्यादि बातो को तो स्वीकार कर लेता है परन्तु कुगुरु, कुशास्त्र तथा अन्य कुलिंगियों की आराधना वह कभी मंजूर नही करता, व्रती श्रावकों का तथा साधु महाराज का तो कहना ही क्या है ?

प्रश्नावली

१. मूढता किसे कहते हैं ? मूढताए कितने प्रकार की होती है।
२ देव मूढता का स्वरूप उदाहरण देकर समझाइयेगा।
३ गुरु मूढता क्या होती है। उदाहरण भी दो।
४ लोकमूढता किसे कहते है ? उदाहरण देकर समझाओ।
५ अनायतन से क्या समझते हो ? अनायतन कितने होते है ? उनके नाम बताओ।
६ अनायतन की भक्ति से क्या हानि होती है ?
७ सम्यक्त्व के २५ दोष कौन से हैं ? उनके नाम बताओ।

सम्यक्दृष्टि के बाहरी चिन्ह और विशेष गुण

सम्यक्-दृष्टि के नीचे लिखे आठ बाहरी गुण प्रकट होते है :—

(१) संवेग—सम्यक्-दृष्टि के धर्म में अनुराग होता है। वह अन्याय के विषय भृंगार, विकथाओ मे, पापमय संगति मे, स्त्री, पुत्र, धन आदिक मे अनुराग नहीं करता—उसको तो दशलक्षण धर्म मे, धर्मात्मा पुरुषो की संगति में, धर्म-कथा में और धर्मायतनो में प्रेम होता है।

(२) निर्वेद—सम्यक्दृष्टि संसार, शरीर और भोगो स्वभाव से ही विरक्त होता है। वैराग्य तथा उसके साधनों से उसे बड़ा प्रेम होता है, वह धर्म प्रेम मे ही रंगा रहता है।

(३) आत्म-निन्दाः—मनुष्य जन्म पाना कठिन है, यदि एक क्षण भी मेरे जीवन को धर्म साधन बिना जाती है तो बढा अनर्थ है, ऐसा एक सम्यक्दृष्टि विचारता है। यदि किसी समय उसको प्रमाद आ जाता है या उसके परिणाम असंयम रुप हो जाते हैं तो वह अपने दोष को विचार कर अपनी निन्दा करता है।

(४) गर्हा—यदि किसी सम्यक्दृष्टि से कोई खोटा आचरण हो जाता है या उसे कोई दोष लग जाता है तो वह गुरु या विशेष ज्ञानी साधर्मीजन के पास जाकर नियम सहित अपने उस खोटे आचरण को या दोष को प्रगट करता है।

(५) उपशम-सम्यक्दृष्टि की आत्मा मे परम-शान्त भाव रहता है, उसके कषाय की मदता होती है। राग, द्वेष, काम, क्रोध, शत्रुता का भाव इत्यादि को वह अपनी आत्मा का घातक समझ कर इनको सदैव मन्द करता है। यदि कारणवश उसे कभी क्रोध आता भी है तो भी उसका हेतु अच्छा होता है, क्रोध को भी दूर कर शीघ्र ही शान्त हो जाता है।

६४ वे घमड और खुदनुमाई के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

(६) भक्तिः—सम्यक्त्वी, देव, शास्त्र, गुरु का परम भक्त होता है, भक्ति से पूजन-पाठ करता है, शास्त्र पढ़ता है, गुरु सेवा करता है, धर्मात्माओं का यथा योग्य विनय करता है।

(७) वात्सल्यः—धर्म और धर्मात्माओं में गौ बच्चे के समान प्रीति रखता है। धर्म के ऊपर या धर्मात्माओं पर किसी समय कोई आपत्ति आती है तो वह तन मन, धन से जिस प्रकार भी बने उसको दूर करने का प्रयत्न करता है।

अनुकम्पाः—सम्यक्दृष्टि बड़ा दयालु होता है दूसरों के दुःख को वह अपना दुःख समझता है, उस को दूर करना कराना अपना धर्म समझता है।

सम्यक्दृष्टि सदा सुखी रहता है। उसको स्वाभाविक सुख जब चाहे मिल सकता है. सांसारिक सुख दुःख उसके मनको विचलित नहीं कर सकते। सम्यक दृष्टि प्राणी-मात्र के साथ मैत्री-भाव रखता है, दीन दुखी जीवों पर करुणा करता है, यथाशक्ति उनके दुखों को दूर करने का प्रयत्न करता है। गुणवानो को देखकर प्रसन्न होता है, उनकी विनय करता है। उन की सेवा टहल करता है। जिनके साथ अपनी बात नहीं बनती उन पर द्वेष नही करता, उनके प्रति माध्य-

सम भाव रखता है। सम्यग्दृष्टि के लाभ में हर्ष और हानि से शोक नहीं होता है। सादा और सन्तोषमय जीवन व्यतीत करता है, यथाशक्ति दान देता है।

सम्यग्दृष्टि विवेकी विचारवान होता है, किसी पर अन्याय या जुल्म नहीं करता, सम्यग्दृष्टि दयावान होता है। सम्यक्-दृष्टि अपने वर्ताव और व्यवहार से जगत का प्यारा हो जाता है सम्यक्-दृष्टि बड़ा साहसी होता है, वह आपत्तियों से घबराता नहीं अपने धर्म से गिरता नहीं। जिनका सम्यक्-दर्शन दृढ़ है और जो सदाचारी है वही पवित्र है, वही विनयवान् है, वही धर्म का जानने वाला है वही ऐसा मनुष्य है जिसका दर्शन औरों को प्रिय होता है।

सम्यक्दर्शन की महिमा

सम्यक्दर्शन की अपूर्व महिमा है, सम्यक्-दृष्टि सदा सन्तोषी रहता है, सम्यक्-दृष्टि यदि चारित्र-मोहनीय कर्म के उदय से व्रत उपवास थोड़े भी न कर सके तो भी उन सम्यक्दृष्टियो की इन्द्र पूजा करते हैं यद्यपि वे गृहस्थी हैं परन्तु वे घर मे रहते हुए भी घर से जुदा हैं, घर मे नही रहते, घर के मोह मे नही फसे हुए है— जैसे जल के अन्दर जन्म लेने वाला, उसी मे रहने वाला कमल जल से अलग रहता है, जैसे कीचड मे पडा हुआ सोना भी निर्मल रहता है, वैसे ही गृहस्थी सम्यक्-दष्टि भी निर्मल रहते हैं । सम्यक्दृष्टि मर कर पहले नर्क के सिवाय बाकी छह नर्कों मे, ज्योतिषी, व्यन्तर, भवन-वासी देवो मे, नपु सको और स्त्रियों मे, स्थावर एकेन्द्रिय मे, दो इन्द्रिय मे, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, विकलत्रय और पशुओ मे जन्म नहीं लेता चाडाल माता पिता से उत्पन्न एक चांडाल भी यदि सम्यक्दर्शन सहित है तो उसे भगवान् गणधर देव "देव" ही कहते है । पूजा गुणो की है, न कि शरीर की शरीर की पूजा कौन करता है ? कौन ज्ञानी इससे राग करता है ? कौन इसकी पूजा वन्दना करता है ? यह तो सम्यक्दर्शन गुण के प्रगट होने पर वन्दने तथा

है सम्यक् दृष्टि ही पराक्रम, प्रताप, विजय, शक्ति, यश, गुण, सुख, वृद्धि, विनय और विभव आदि इन समस्त गुणो का स्वामी होता है। महान् धर्म, महान् अर्थ, महान् काम, महान् मोक्षरूप चारो पुरुषार्थों का स्वामी होता है। सम्यक्-दर्शन के प्रभाव से मनुष्य महाऋद्धि का धारक देव तथा चक्रवर्ती होता है सम्यक्-दर्शन की ही बदौलत एक जीव देवेन्द्र, धरणेन्द्र चक्रवर्ती तथा गणधर देवो द्वारा पूज्य तीर्थंकर पद को प्राप्त होता है। सम्यक्-दर्शन का धनी ही मोक्ष के अद्वितीय, अजर अमर, अविनाशी सुख को प्राप्त होता है। इस प्रकार सम्यक्-दर्शन की महिमा को जानकर अन्य जीवो को सम्यक् दर्शन रूप अमृत का ही पान करना योग्य है। सम्यक्-दर्शन अनुपम अतीन्द्रिय सहज सुख का भंडार है। सर्व कल्याण का बीज है, ससार समुद्र से पार करने के लिए जहाज के समान है, भव्य जीव ही इसको पा सकते हैं, यह पापरूपी वृक्ष के काटने को कुठार है। पवित्र तीर्थो मे ये ही प्रधान है और मिथ्यात्व का शत्रु है।

प्रश्नावली

१. गृहस्थी सम्यक्दृष्टि गृहस्थ मे रहते हुए भी निर्मल है दृष्टान्त देकर समझाओ।
२ सम्यक् दृष्टि मर कर कहाँ-कहाँ जन्म नही लेता ?
३. रत्नत्रय मे सम्यक् दर्शन को सबसे मुख्य और श्रेष्ठ क्यो माना गया है ?
४. ससार मे जीव के लिए श्रेष्ठ कल्याणकारी वस्तु क्या है ?

यह तो पशुओं में भी पाया जाता है। एक कर्तव्य पालन ही मनुष्य मे विशेषता रखता है। यदि यह विशेषता न हो तो मनुष्य और पशु मे कोई अन्तर नही है।

द्रव्य दान देने वाले बहुत हैं, परन्तु जननी और जन्म भूमि की सेवा मे अपने आप को बलिदान करने वाले बहुत कम व्यक्ति होते हैं। वीर चामुण्डराय का जीवन ऐसी२ बातो से भरा हुआ है। जैन धर्मानुयायी गंग वंश मैसूर प्रान्त मे सन् १०३ ई० से सन् १००४ तक बराबर राज्य करता रहा, इस ही कुल में राजा राचमल्ल द्वितीय (९७४—९८४) हुए है। वीरशिरोमणि चामुण्डराय इन्हीं राजा राचमल्ल के मंत्री व सेनापति थे। राजा चामुण्डराय ब्रह्मक्षत्र वंश मे उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम और जन्म दिन अभी ज्ञात नहीं हुआ है। इनकी माता का नाम कललदेवी और स्त्री का नाम अजितादेवी था। श्री अजितसेनाचार्य और श्री नेमिचन्द्राचार्य सिद्धांत-चक्रवर्ती इनके गुरु थे।

चामुण्डराय की माता जैन धर्म से बड़ा प्रेम रखती थी जिससे पता चलता है कि चामुण्डराय के पूर्वज भी जैनधर्म के अनुयायी होंगे। वीर चामुण्डराय राजा राचमल्ल के मन्त्री होते हुए भी जिस ढंग से कार्य करते थे वह लेखनी से बाहिर है। इतिहास तथा

बहुत सी उपाधिया प्राप्त हुई । वे समर-धुरन्धर, वीर मार्त्तण्ड, रणरङ्गसिंह, वैरी कुल काल दंड, भुज-विक्रमी, छल दङ्क गंग, समर-परशुराम, भटमारि, सुभट चूड़ामणि, वीर शिरोमणि आदि कितनी ही उपाधियो से विभूषित थे ।

राजा चामुण्डराय केवल योद्धा ही नहीं थे, वे बड़े विद्वान भी थे । साहित्य और कविता खूब अच्छी तरह जानते थे। सस्कृत, प्राकृत, कनडी भाषा के पूर्ण विद्वान थे । उन्होने सस्कृत में चारित्रसार ग्रन्थ रचा । कनाडी भाषा मे चामुण्डराय पुराण की रचना की । श्री नेमिचन्द्राचार्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती ने जब राजा चामुण्डराय की प्रार्थना पर श्री गोमटसार प्राकृत ग्रंथ की रचना की तो चामुण्डराय कनड़ी भाषा में साथ २ उसका अनुवाद करते जाते थे । इसी टीका के आधार पर केशव-वर्णी सस्कृत टीका बनाई । इससे यह बिल्कुल साफ हो जाता है कि चामुण्डराय शास्त्र के उच्च कोटि के ज्ञाता और कवि थे ।

चामुणराय श्रावक भी पक्के थे, वह श्रावक धर्म का पूर्ण रीति से पालन करते थे, सदैव सत्य बोलते थे, इसीलिये वे 'सत्य युधिष्ठर' कहलाते थे । धर्म कार्यों मे उनकी रुचि सदैव बनी रहती थी । आपने अपने बनाये चारित्रसार मे वीर चामुण्डराय ने मुनि धर्म और श्रावक धर्म दोनो का पूर्ण रीति से वर्णन किया है, इससे जान पड़ता है कि वह श्रावकाचार के पालने वाले थे इसी कारण वह 'सम्यक् रत्नाकार' कहलाते थे ।

यद्यपि राजा चामुण्डराय इस समय संसार में नहीं किन्तु उनके जीवन की घटनायें देखी जावें तो अभी तक संसार में जीवित हैं। उनका चारित्र श्रावकों के लिये बड़ा शिक्षाप्रद और एक आदर्श गृहस्थ, धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थ के पालने वाले का प्रमाण है। उनके जीवन से हमे शिक्षा लेनी चाहिए कि गृहस्थ के लिए धर्मार्थ शस्त्र धारण करना कोई पाप नहीं है, शस्त्र धारण करने से मनुष्य धर्मच्युत नहीं कहा जा सकता। चामुण्डराय सेनापति होकर भी अणुवृत्ति सम्यक्दृष्टि गृहस्थ थे। ऐसा झलकता है, उनका चारित्र पढ़कर हमे चाहिये कि कायरता छोड़, वीरता का भाव अपने मन में जागृत करें। व्यायाम कर तथा शस्त्र विद्या का अभ्यास कर अपने पूर्ण बल और पौरुष को प्रगट करें और अद्भुत लौकिक व पारमार्थिक कार्यों को करने के लिए अपने को शक्तिशाली और साहसी बनावें।

प्रश्नावली

१ वीर शिरोमणि चामुण्डराय का जन्म किस देश और किस कुल मे हुआ ?

२ क्या उनके माता पिता का नाम वता सकते हो ? उनके धर्म गुरु कौन थे ?

३ चामुण्डराय अपने किन २ गुणो के कारण प्रसिद्ध हुए ?

४ चामुण्डराय ने ऐसा कौन सा कार्य किया जिसके कारण आज तक उनका यश गाया जाता है ?

५ चामुण्डराय ने कौन २ से ग्रन्थ लिखे ?

इसी आत्म ज्ञान या निश्चय ज्ञान को प्राप्ति के लिये शास्त्र के तारा छह द्रव्य, पचास्तिकाय, सात तत्व और नव पदार्थो का ज्ञान जरूरी है। इस शास्त्राभ्यास का नाम व्यवहार सम्यक्-ज्ञान है। जिनवाणी में बहुत से शास्त्र है उनको चार अनुयोगो में बांट दिया गया है, जिनको चार वेद भी कहा जा सकता है। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग।

(१) प्रथमानुयोग–प्रथम अवस्था के कम ज्ञान वाले शिष्यो को तत्वज्ञान की रुचि कराने मे जो समर्थ हो उसको प्रथमानुयोग कहते हैं। इसमे उन महान् पुरुषो और महान स्त्रियो के जीवन चरित्र हैं जिन्होने धर्म धारण करके अपने आत्मा की उन्नति की है। इसमे उनके भी चरित्र हैं जिन्होने पाप बाधकर दुःख उठाया है व जिन्होने पुण्य बांधकर सुख साताकारी साधन प्राप्त किया है। इससे यह शिक्षा मिलती है कि हमको भी पाप का त्याग करना चाहिये और धर्म का साधन करके अपना हित करना चाहिये। इस योग के ग्रन्थ आदिपुराण, हरिवंशपुराण, पार्श्वपुराण आदि हैं।

है, चरणानुयोग के ग्रंथों में पाई जाती हैं। चरणानुयोग के ग्रन्थ मूलाचार आचारसार चारित्रसार रत्नकरण्ड श्रावकाचार इत्यादि अनेक हैं।

(४) द्रव्यानुयोग—इसमे छह द्रव्य, पंचास्तिकाय सात तत्व, नौ पदार्थ का व्यवहार नय रूप से पर्याप्त रूप और निश्चय नय से द्रव्य रूप कथन हैं। इसमे शुद्ध आत्मानुभव के साधन बताये गये हैं, जीवन मुक्त होने का मार्ग बताया गया है—आत्मा से परमात्मा बनने का साधन या उपाय इस अनु में योग बताया गया है।

इन ऊपर लिखे चारो अनुयोगों के शास्त्रो का नित्य प्रति अभ्यास करना सम्यक्-ज्ञान का सेवन है।

प्रश्नावली

१ सम्यक्-ज्ञान किसे कहते हैं? सम्यक्दर्शन और सम्यक-ज्ञान मे क्या अन्तर है दृष्टात देकर समझाओ।

२ निश्चय सम्यक्ज्ञान किसे कहते हैं? और व्यवहार सम्यक्ज्ञान क्या है?

३ जिनवाणी को कौन २ से मुख्य चारभेदो मे बाटा गया है उनके नाम बताओ।

४. प्रथमानुयोग किसे कहते है? प्रथमानुयोग के कुछ मुख्य मुख्य ग्रन्थो के नाम बताओ।

५ चरणानुयोग से आप क्या समझते हैं? मुख्य २ ग्रन्थो के नाम बताओ?

भाव ग्रन्थ में भरा हैं उसको ठीक-ठीक समझना अर्थ शुद्धि है।

(३) उभय शुद्धि—ग्रन्थ का शुद्ध पढना और उनके अर्थ को शुद्ध समझना। दोनो वातो का ध्यान एक ही साथ रखना उभय शुद्धि है।

(४) कालाध्ययन—शास्त्रो को यथा योग्य समय पर पढना, शास्त्रो को ऐसे समय पर पढ़ना चाहिए जब परिणामो मे निराकुलता हो। संध्या का समय आत्म ध्यान तथा सामायिक करने का होता है, उस समय को सवेरे, दोपहर तथा शाम को बचा लेना चाहिये। जब कोई घोर आपत्ति का समय हो, तूफान आ रहा हो, भूकम्प आ रहा हो, घोर कलह या युद्ध हो रहा हो, किसी महान पुरुष के मरण का शोक मनाया जा रहा हो, ऐसे आपत्ति के समय पर शास्त्र पढने में उपयोग नहीं लगता, उस समय पर तो शांति के साथ ध्यान करना ही योग्य है।

(५) विनय—शास्त्र को बड़े आदर से पढ़ना चाहिये शास्त्र पढ़ते समय बड़ी भक्ति और प्रेम होना चाहिये, शास्त्र पढ़ते समय भावना होनी चाहिये कि मेरे जीवन का समय सफल हो, मुझे आत्म ज्ञान की प्राप्ति हो।

(६) उपाधान—धारणा सहित ग्रन्थ को पढ़ना चाहिए जो कुछ पढ़ा जावे, वह भीतर जमता जाये, यदि पढ़ते चले गये और कोई बात ध्यान में नहीं जमी तो अज्ञान तो मिटेगा नहीं, लाभ क्या होगा ? यह अङ्ग बड़ा जरूरी है, ज्ञान का प्रबल साधन है ।

(७) बहुमान—शास्त्र को बड़े मान प्रतिष्ठा से ऊँची चौकी पर विराजमान करके आसन से बैठकर पढ़ना बांचना उचित है । शास्त्रों को अच्छे २ सुन्दर गत्तो तथा वेष्ठनों से भूषित करके ऐसी अलमारियो में सुरक्षित रखा जावे जहाँ दीमक चूहे आदि उनको बिगाड़ न सकें ।

(८) अनिन्हव—यदि अपने को शास्त्र ज्ञान हो और कोई उसकी बाबत हम से कुछ पूछे तो बता देना चाहिये, समझा देना चाहिये, छिपाना नहीं चाहिये, जिस गुरु से या जिस शास्त्र से ज्ञान प्राप्त हो उसका नाम न छिपावे ।

यह सम्यक्ज्ञान के आठ अंग कहलाते हैं, इन आठो अंगो सहित जो शास्त्रों का अभ्यास करता है, मनन करता है, वह व्यवहार सम्यक ज्ञान का सेवन करता हुआ निश्चय सम्यक् ज्ञान को प्राप्त कर लेता है ।

प्रश्नावली

१. सम्यकज्ञान के आठ अग कौन २ से है ? इनके नाम बताओ।
२ व्यजन शुद्धि, अर्थशुद्धि और उभयशुद्धि से आप क्या समझते है ? दृष्टान्त देकर समझाओ।
३ कालाध्ययन किसे कहते हैं ? किस समय कैसे २ और कौन से ग्रन्थ पढने चाहिए ?
४ शास्त्र की विनय क्या है ?
५ उपप्रधान किसे कहते है ?
६ बहुमान और अनिन्हव अग का स्वरूप समझा कर बताइये।

ज्ञान के आठ भेद

प्रमाण ज्ञान के मुख्य पाँच भेद बताये गये है—मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान, अवधिज्ञान, मन.पर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान। मति ज्ञान, श्रुतिज्ञान और अवधिज्ञान ये तीनो ज्ञान मिथ्यादृष्टि और सम्यक्दृष्टि दोनो के हो सकते है और मनः पर्यय ज्ञान और केवलज्ञान यह दो ज्ञान सम्यक्दृष्टि के ही होते है। मिथ्यादृष्टि का ज्ञान कुज्ञान अर्थात् खोटा ज्ञान कहलाता है। इससे मति, श्रुति और अवधि यह तीन ज्ञान जब मिथ्या-दृष्टि के होते हैं तो कुमति, कुश्रुति और कुअवधि कहलाते है। इस प्रकार तीनों कुज्ञानों को मिलाकर ज्ञान के आठ भेद हो जाते हैं।

मतिज्ञान पाँच इंन्द्रियों और मन को सहायता से सोधा पदार्थ का जानना मतिज्ञान है—मति ज्ञान से जाने हुवे पदार्थ के सम्बन्ध मे और विशेष बात को जानना श्रुतिज्ञान है। जैसे ठडी हवा ने हमारे शरीर को जब छुवा नही तो हमने स्पर्श इन्द्रिय के द्वारा हवा के ठंडेपने को जाना, यह तो मतिज्ञान हुआ परन्तु यह जानना कि यह ठंडी हवा लाभदायक है या हानिकारक, यह श्रुतिज्ञान है। रसना इन्द्रिय के द्वारा पेडे के मीठेपन के स्वाद का ज्ञान होना मतिज्ञान है फिर चखने वाले के लिए उसके सुखदाई या दुखदाई होने का ज्ञान होना श्रुतिज्ञान है। भँवरे को सुगंधित फूल की खुशबू का आना मतिज्ञान है फिर उस खुशबू से खिचकर फूल की ओर आने की बुद्धि का होना श्रुतिज्ञान है। पतगे को आख से दीपक का जलना देखकर ज्ञान होना मतिज्ञान है, यह भासना कि दीपक हितकारी है। या अहितकारी यह श्रुतज्ञान है। कानो के बाजे की आवाज का सुनना मतिज्ञान है, फिर यह जानना कि आवाज हारमोनियम की है, श्रुतज्ञान हुआ। मति ज्ञान और श्रुतिज्ञान प्रत्येक जीव के होता है, कोई भी जीव इन दोनों से

बचा हुआ नहीं है। इतना जरूर है किसी जीव में यह ज्ञान ज्यादा होते हैं और किसी मे कम। निगोदिया जीव को एक अक्षर के अनन्तवें भाग अर्थात् नाममात्र ही ज्ञान होता है।

अवधिज्ञान—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा को लिए हुए रूपी पदार्थ अर्थात् पुद्गल पदार्थ को या पुद्गल सहित अशुद्ध जीवों का वर्णन विना इन्द्रियों को सहायता आत्मीक शक्ति से जानना अवधि ज्ञान है। देव नारको और श्री तीर्थंकर भगवान के यह ज्ञान जन्म दिन से ही होता है, इस कारण इन तीनो के अवधिज्ञान को भवप्रत्यय अवधिज्ञान कहते हैं, सैनी पंचेन्द्रिय जीव को जिसकी इन्द्रियां पूर्ण हो, किसी गुण के कारण अर्थात् किसी खास तप के बल से यदि अवधिज्ञान प्राप्त हो जावे तो उसको गुण प्रत्यय ज्ञान कहते हैं।

मनः पर्यय ज्ञान—दूसरे के मन मे पुद्गल या अशुद्ध जीवों के सम्बन्ध में कभी जो विचार किया जा चुका है, या अब चल रहा है या आगे कोई विचार होगा, उस सबको आत्मा द्वारा जानना मनः पर्ययज्ञान है। यह ज्ञान अवधिज्ञान से ज्यादह निर्मल है, यह ज्ञान बहुत सूक्ष्म बातों को जान सकता है, जिनको अवधि-

ज्ञानी भी न जान सके। यह ज्ञान ध्यानी, तपस्वी सम्यक् दृष्टि महात्माओ तथा योगीश्वरों के ही होता है।

केवलज्ञान—यह ज्ञान को ढक देने वाले कर्म ज्ञानावरण के क्षय होने पर होता है, स्वाभाविक पूर्ण ज्ञान है, लोक अलोक की भूत, भविष्यत और वर्तमान सर्व वस्तुओ को और सर्व गुण पर्यायों को एक साथ जानने वाला है, इस ज्ञान में किसी वस्तु का जानना बाकी नही रहता है यह ज्ञान एक बार प्रकाश होने पर फिर मलीन होता नही सदा ही अपने शुद्ध स्व-भाव मे प्रगट रहता है। यह ज्ञान अर्हन्त परमेष्ठी तथा सिद्ध परमेष्ठी मे प्रगट चमकता रहता है। ससारी जीवो मे यह प्रगट नहीं होता, शक्तिरूप से रहता है।

इ ऊपर बताये पाँचो ज्ञानो मे से, अवधि, मन पर्यय और केवल यह तीन ज्ञान इन्द्रियो के सहारे बिना आत्मिक शक्ति के बल से साक्षात् रूप होते हैं इसलिए इनको प्रत्यक्ष कहते हैं और मतिज्ञान और श्रुतिज्ञान ये दो ज्ञान मन और इन्द्रियो के द्वारा होते हैं, इसलिये इनको परोक्ष कहते है।

इन ज्ञानों मे श्रुत ज्ञान ही एक ज्ञान है जिससे शास्त्र ज्ञान होकर आत्मा का भेद विज्ञान होता है। यह आत्मा कर्मों से भिन्न है, सिद्ध परमेष्ठी के समान

शुद्ध है। जिसको आत्मानुभव हो जाता है वही भाव श्रुति ज्ञान को पा लेता है। मनः पर्यय ज्ञान और अवधिज्ञान तो रूपी पदार्थों को ही जानते है, श्रुत ज्ञान अरूपी पदार्थों को भी जान सकता है। श्रुत ज्ञान के बल से केवलज्ञान हो सकता है। इसलिये श्रुत-ज्ञान प्रधान है। ऐसा जानकर हमे चाहिए कि शास्त्र ज्ञान का अभ्यास करते रहे, जिससे आत्मानुभव मिले ये ही सहज सुख का साधन है, ये ही केवलज्ञान का प्रकाशक है। जिनवानी को खूब पढ़ना चाहिए यह पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को बताने वाली है, पूर्वापर विरोध रहित है, शुद्ध है, विशाल है, अत्यन्त दृढ़ है, अनुपम है, प्राणीमात्र की हितकारिणी है और रागादि मल को हरण करने वाली है इसके पठन पाठन से आत्महित का बोध होता है सम्यक्त आदि गुणो की दृढता होती है, नया नया धर्मानुराग बढता है, धर्म मे निश्चलता होती है तप करने की भावना होती है। उपदेश देने की योग्यता आती है—परम्पराय से आत्म-ज्ञान की प्राप्ति करा परमपद को प्राप्त कराने वाली है।

प्रश्नावली

(१) ज्ञान के मुख्य भेद कितने है ? उनके नाम बताओ।
(२) मिथ्यादृष्टि के कौन से ज्ञान हो सकते है ?
(३) मति ज्ञान और श्रुति ज्ञान का स्वरूप समझाओ इन दोनो मे से पहले कौन सा ज्ञान होता है ?

(४) निगोदिया जीव के कितना ज्ञान कम से कम होता है ?
(५) अवधिज्ञान से आप क्या समझते हैं ?
(६) भवप्रत्यय अवधि और गुणप्रत्यय अवधि ज्ञान की व्याख्या करो ।
(७) मन पर्यय ज्ञान किसे कहते है ?
(८) केवलज्ञान का स्वरूप बताओ ?
(९) प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते है ? और परोक्ष ज्ञान किसे कहते हैं कौन २ से ज्ञान प्रत्यक्ष है और कौन कौन से परोक्ष हैं ?
(१०) श्रुतज्ञान में क्या विशेषता है ?

सम्यक्ज्ञान की महिमा

इस जगत मे जीवो को सुख का देने वाला ज्ञान के बराबर और कोई दूसरा पदार्थ नहीं है, यह ज्ञान उत्तम अमृत के समान है । इस ज्ञानामृत के पीने से ही जन्म, जरा और मृत्यु, जो एक संसारी जीव के लिए भयानक रोग है, दूर हो जाते हैं । ज्ञान के बिना अज्ञानी जीव करोड़ो जन्मो मे तप करके जितने कर्मों को दूर करता है उतने कर्मों को ज्ञानी जीव एक क्षण मात्र मे अपने मन, वचन, काय को रोक करके सहज में नाश कर देता है । इस जीव ने अनन्त बार मुनि-व्रत धारण किया और ग्रैवेयक विमानो में भी गया, परन्तु आत्मज्ञान न होने के कारण इसे जरा भी सुख की प्राप्ति नहीं हुई ।

सम्यक्ज्ञान के अभ्यास से राग द्वेष मोह गिरता है, समताभाव जागृत होता है, आत्मा मे रमण करने का उत्साह बढता है, सहज सुख का साधन बन जाता है, स्वानुभाव जागृत हो जाता है। परम धैर्य्य प्रकाशमान होता है। यह जीवन परम सुन्दर सुवर्णमय हो जाता है। ज्ञानाभ्यास के बिना कषायों की मंदता नहीं होती। व्यवहार की मदता नही होती। व्यवहार की शुद्धता, परमार्थ का विचार आगम की सेवा से ही होते हैं। सम्यक्ज्ञान ही जीवन का परम बन्धु है, ये ही उत्कृष्टधन है, परम मित्र है। सम्यक्ज्ञान ही अविनाशी धन है। स्वदेश मे, परदेश मे, सुख में, आपदा मे, सम्पदा मे परम शरणभूत सम्यक्ज्ञान ही है। यह एक स्वाधीन, अविनाशी धन है। पाचो इन्द्रियो के विषयो से विरक्त होकर विनय भक्ति सहित ज्ञान की भावना करने से आत्म कल्याण होता है, मनुष्य जन्म का सार भी ये ही है कि सम्यक्ज्ञान की भावना की जावे और अपनी शक्ति को न छिपाकर संयम को धारण किया जावे। आत्मकल्याण के चाहने वालों के लिये जरूरी है कि वह ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा सदा ज्ञान का मनन करते रहे और तप की रक्षा करें। जिसके हृदय मे ज्ञान सूर्य का उजियारा प्रकाशमान

रहता है, उसके हृदय में मोहरूपी घोर अन्धकार टिकने नहीं पाता। धन्य हैं वे पुरुष जिनका जन्म गुरु की सेवा में बीतता है, जिनका मन धर्म ध्यान में लीन रहता है और जिनका शास्त्र अभ्यास साम्यभाव की प्राप्ति के लिये काम में आता है। स्वाध्याय करते समय पांचों इन्द्रियां वश मे होती है, मन, वचन, काय स्वाध्याय मे रत हो जाते हैं, ध्यान एकाग्रता होती है, विनय गुण की वृद्धि होती है, स्वाध्याय या ज्ञानाभ्यास परम उपकारी है। शास्त्र का अभ्यासी पुरुष प्रमाद का दोष होते हुवे भी संसार मे पतित नहीं होता, अपनी रक्षा करता है, ज्ञान बड़ी अपूर्व वस्तु है। वे ही मुनिराज मोक्ष पद के स्वरूप को जानने वाले हैं जो जिनवाणी को रुचिपूर्वक अपने कानों से सुनते हैं जो प्रमाण और नय के ज्ञाता है और जिनकी बुद्धि विशाल है। वास्तव मे सम्यक्ज्ञान की महिमा विचित्र है। इसलिये जिनेन्द्र भगवान के कहे हुवे तत्वो और शास्त्रो का अभ्यास करना चाहिये। संशय, विभ्रम और विमोह इन तीनों दोषो को छोड़कर आत्मा को पहचानना चाहिए। यह नर भव, उत्तम कुल तथा जिनवाणी का सुनना जो पुण्योदय से इस समय मिला है, यदि वैसे ही व्यर्थ में बीत गया तो फिर इनका मिलना ऐसा ही कठिन है जैसे समुद्र मे गिरे हुवे रत्न का मिलना कठिन है।

धन, समाज, हाथी, घोड़ा, राज्य आदि कोई अपने आत्मा के काम नही आता है। ज्ञान जो आत्मा का स्वरूप है, उसी के प्रकाशित होने पर आत्मा निश्चल रहता है, उस आत्म ज्ञान का कारण अपने और पर का भेद विज्ञान है, इसलिये हे भव्य जीवो! करोड़ो उपाय करके भी जिस तरह बने उस भेद विज्ञान को प्राप्त करो। मुनियो के नाथ जिनेन्द्र भगवान् ने फर्माया है जितने पहले मोक्ष गये, अब जाते हैं और आगे जावेंगे, उन सबके लिये ज्ञान का प्रभाव ही कारण जानना चाहिये। पंचेन्द्रियो की दाह एक धधकती हुई अग्नि के समान है, ससार के लोग बन के समान है उन्हे यह अग्नि भस्म किये जा रही है, ऐसी अग्नि को शान्त करने का उपाय सिवाय ज्ञान रूपी मेघो की वर्षा के और कोई दूसरा नहीं है। हे भव्य जीवो! धनादि पुण्य के फल है, उन्हे देखकर हर्ष मत करो, तथा रोग वियोग आदि को पाप का फल जान कर शोक मत करो। यह पाप पुण्य पुद्गल रूप कर्म की पर्यायें है, जो पैदा होकर नाश को प्राप्त हो जाती है और फिर पैदा हो जाती है। सारांश यह है और लाख बातो की बात यह है और तुम उस पर निश्चय लाओ कि जगत् के सब द्वन्द फन्द तोड़ कर ज्ञान का उपार्जन करो और आत्म ध्यान का अभ्यास करो।

सम्यग्ज्ञान पापरूपी अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य के समान है, मोक्षरूपी लक्ष्मी के निवास के लिए कमल के समान है, काम रूपी सर्प को कीलने के लिए मन्त्र के समान है, मन रूपी हाथी को वश करने के लिये दीपक के समान है और पांचो इन्द्रियो के विषयों को पकड़ने के लिये जाल के समान है।

प्रश्नावली

(१) ज्ञानी और अज्ञानी के तप मे कुछ अन्तर है या नही? यदि है तो क्या?
(२) सम्यग्ज्ञान की महिमा अपने शब्दो मे वर्णन करो।
(३) संशय, विभ्रम और विमोह से आप क्या समझते है?
(४) प्रमाण और नय से क्या समझते हो?
(५) शास्त्राभ्यास का फल क्या है?
(६) भेद विज्ञान किसे कहते हैं?
(७) आत्म कल्याण के लिए भेद विज्ञान क्यो जरूरी है?
(८) ज्ञान का उपार्जन और आत्म ध्यान का अभ्यास जीव के लिए क्यों जरूरी है?

बारह भावना

(दौलतराम जी कृत--चाल छन्द १४ मात्रा)

मुनि सकल व्रति बड भागी, भव भोगन तैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिन्तै अनुप्रेक्षा भाई ॥१॥
इन चिन्तत समसुख जागै, जिमि ज्वलन पवनके लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै॥

अनित्य भावना १

जोवन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई ॥३॥

अशरण भावना २

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यो हरि काल दलेते।
मणि मन्त्र तन्त्र बहु होई, मरते न बचावै कोई ॥४॥

ससार भावना ३

चहुंगति दुख जीव भरे है, परिवर्तन पंच करे है।
सब विधि ससार असारा, यामे सुख नाहि लगारा ॥५

एकत्व भावना ४

शुभ अशुभ करम फल जेते, भोगै जिय एक ही तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी ॥६॥

अन्यत्व भावना ५

जल पय ज्यो जिय तन मेला, पै भिन्न २ नहीं भेला।
त्यो प्रकट जुदे धन धामा, क्यो ह्वै इक मिल सुत रामा

अशुचित्व भावना ६

यह रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादि तै मैली।
नरद्वार बहे घिनकारी, अस देह करै किम यारी ॥८॥

आस्रव भावना ७

जो योगन की चपलाई, तातै ह्वै आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधवंत तिन्है निरवेरे ॥६॥

संवर भावना ८

जिन पुण्य पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना ।
तिन ही विधि आवत रोके,संवर लहि सुख अवलोके ।।

निर्जरा भावना ९

निज काल पाय विधिझरना,तासों निज का जन सरना
तप कर जो कर्म खिपावै, सोई शिव सुख दर्शावै ।।११

लोक भावना १०

किनहू न करयो न धरयो को, षट् द्रव्य मई न हरै को
ता लोक मांहि बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता

बोधि दुर्लभ भावना ११

अन्तिम ग्रीवकलौं की हद, पायो अनंत विरियाँ पद ।
पर सम्यग्ज्ञान न लाध्यो, दुर्लभ जिनमें मुनि साध्यो ।।

धर्म भावना १२

जो भाव मोह तै न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे ।
सो धर्म जबै धारै जिय,तबही सुख अचल निहारै ।।१४।
सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिन की करतूत उचरिये ।
ताको सुनके भवि प्राणी,अपनी अनुभूति पिछानी ।।१५

प्रश्नावली

(१) भावना किसे कहते है ? ये कितनी हैं ? उनके नाम बताओ ।
(२) भावनाओ का चिन्तवन कौन करते हैं ? इनके चिन्तवन से क्या लाभ है ?
(३) एकत्व और अन्यत्व भावना मे क्या भेद है ?

(४) अशुचि भावना, निर्जरा भावना और धर्म भावना के छन्द सुनाओ।
(५) आस्रव और संवर भावना का स्वरूप बताओ।
(६) इन भावनाओं के रचयिता कौन हैं ? ये भावनायें किस पुस्तक से ली गई हैं ?

त्याग

प्रभु आदिनाथ को नर-नारी ही नहीं, देवी देवता भी वन्दना करने आया करते थे। विश्व को पिता के चरणों पर झुका हुआ देख प्रभु की दोनों कन्यायें ब्राह्मी और सुन्दरी आत्म सुख अनुभव करती थीं। अभी उम्र की वे छोटी थी और पिता को ही सर्वस्व समझतीं थीं। समझतीं क्यों नहीं भला इनसे भी महान् और कोई होगा, देवता तक जिनकी वन्दना करते हैं। समय तो रुकता नहीं आया और बीत गया कि एक दिन सरल स्वभाव पिता से पूछने लगी 'पिताजी! आपसे भी अधिक पूज्य कोई है ?'

प्रभु थोड़ी देर मौन रहे, फिर बोले—'हां हैं।'

पुत्रियों को पिता के उत्तर में आस्था लाने में यत्न लगा, उन्हें रह रहकर आज क्यों पिता के ये वाक्य गंभीर लगने लगे, तो आगे प्रश्न किया—'पिता जी! वे कौन हो सकते हैं ? जो आपसे भी पूज्य हैं!'

या आप हमें छोटा अल्पज्ञ समझ हमारी आत्म-तुष्टि नहीं करना चाहते ?'

प्रभु ने कहा—'जिससे तुम्हारा विवाह होगा, वे हमारे पूज्य होगे ।' अब संशय का कोई स्थान नहीं । पुत्रियो को आदत नही कि पिता से भी अधिक किसी को पूज्य समझें पर वे मानव हैं, उनमे आज अन्तर्द्वन्द मचा है। एक ओर पिता का जगत् पूज्यत्व और एक ओर समस्त जीवन का सुख वैभव ।

ब्राह्मी ने सुन्दरी और सुन्दरी ने ब्राह्मी की ओर देखा—देखा जैसे दोनो की आँखो ने कहा—'उन्ही के द्वारा पिता का विश्व वंद्यत्व नष्ट होगा ?' वे अपने और दूसरे के हृदय की थाह लेने लगीं ।

उसी पल उन्होने निश्चय किया और प्रभु के चरणो में नत होकर बोलीं—'पर पिताजी, हम तो दीक्षा लेने जा रही हैं' और वे आर्यिका हो गई । प्रभु कन्याओ के त्याग पर मुस्करा दिये ।

(अक्षयकुमार बी ए दि० जैन धम कथाक)

प्रश्नावली

१—ब्राह्मी और सुन्दरी ने अपने पिता जी श्री ऋषभदेव भगवान् से क्या पूछा ? और भगवान् ने क्या उत्तर दिया ?

२—अन्तर्द्वन्द का क्या अर्थ है ?

३—पिताजी का उत्तर सुनकर ब्राह्मी और सुन्दरी ने क्या निश्चय किया और क्यो किया ?

४—इस कथा से क्या शिक्षा मिलती है ?

सम्यक्-चारित्र

अपने ही शुद्ध भावो में रमण करने का नाम निश्चय चारित्र है और इस अवस्था को प्राप्त होने का जो कारण है वह व्यवहार चारित्र है। यदि कोई केवल व्यवहार चारित्र को ही पाले और उसके द्वारा निश्चय सम्यक् चारित्र को प्राप्त न कर सके तो वह व्यवहार चारित्र यथार्थ नहीं कहलायेगा, जैसे कोई व्यापारी व्यापार वाणिज्य तो बहुत करे और धन का लाभ नहीं कर सके तो उसके व्यापार को यथार्थ व्यापार नही कहा जायेगा।

यह व्यवहार सम्यक् चारित्र दो प्रकार का है। एक सकल चारित्र या साधु का चारित्र, दूसरा विकल या श्रावक का चारित्र।

ससारी प्राणी क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारो कषायो के वशीभूत होकर रागी द्वेषी हुवा २ अपने २ स्वार्थ साधन के लिये पाँच प्रकार के पाप हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह को किया करता है। इन ही पांच पापो का पूर्ण रूप से त्याग करना, साधु का

चारित्र है। इन ही के पूर्ण त्याग को महाव्रत कहते हैं, इन ही की दृढता के लिये पंच समिति तथा तीन गुप्ति का पालन किया जाता है। इसीलिये पच महाव्रत, पंच समिति और तीन गुप्ति इन को मिला कर तेरह प्रकार का चारित्र मुनि का कहा गया है। इनमे पंच महाव्रत मुख्य है। यद्यपि महाव्रत पाच बताये गये हैं, परन्तु एक अहिंसा महाव्रत मे बाकी चार सत्य महाव्रत, अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत और परिग्रह त्याग महाव्रत गर्भित है। झूठ बोलने से, चोरी करने से, कुशील भाव से तथा परिग्रह की तृष्णा से आत्मा के गुणो का घात होता है, इसलिये वे सब हिंसा के ही भेद हैं। जहाँ हिंसा का सर्वथा पूर्ण त्याग है, वहाँ झूठ चोरी, कुशील और परिग्रह इन चारो पापो का भी त्याग हो जाता है।

(१) अहिंसा महाव्रत

कषाय से अपने या पर जीव के भाव प्राण या द्रव्य प्राण को पीड़ा न देना अहिंसा महाव्रत है, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायो से या प्रमाद भाव से आत्मा के शुद्ध शान्त भाव का घात होता है, उन भावो के होने को भाव हिंसा कहते है। अपने तथा दूसरो के द्रव्य प्राण के घात होने का नाम द्रव्य

हिंसा है । मुनिराज छह काय के जीवों का घात नहीं करते, उनकी रक्षा करते हैं, इसलिये उनके द्रव्य हिंसा का त्याग होता है, राग द्वेष, मोह आदि विकार भावों को उन्होंने नष्ट कर दिया है, इसलिये उनके भाव हिंसा भी नहीं होती । मन, वचन, काय से संकल्पी तथा आरम्भी हिंसा के सर्वथा त्यागी होते हैं । मुनिराज भावना किया करते हैं कि वे अपने वचन को वश मे रखें, कभी कोई ऐसा वचन मुख से न निकलने पावे जिससे अपने को या अन्य प्राणियो को पीड़ा पहुँचे । कभी कोई हिंसा रूप विचार मन में न आने पावे । इस बात का विचार करते रहते हैं कि गमन करते समय किसी जीव को हिंसा न होवे, किसी वस्तु के उठाते या रखते समय किसी जीव को हिंसा न हो जावे भोजन पान आदिक भले प्रकार देख शोध कर किया जावे । जिससे किसी जीव को हिंसा न होवे ।

(२) सत्य महाव्रत

मन, वचन, काय से सर्वथा असत्य का त्याग करना–महाव्रती साधु सदा हित मित मिष्ट वचन शास्त्रोक्त ही बोलते हैं, वे कभी अप्रिय, कटुक, कठोर पाप रूप, निंद्य गाली-गलौज के शब्द तथा हिंसा के

बढ़ाने वाले वचन नहीं कहते। मुनिराज इस बात का विचार रखते हैं कि क्रोध न आने पावे, लोभ न उपजे भय उत्पन्न न हो, क्योकि इन तीनों अवस्थाओ में असत्य वचन मुख से निकल जाता है। मुनिराज यह ध्यान करते हैं कि हास्य रूप वचन अर्थात् हँसी मजाक के वचन मुख से न निकलने पावे क्योकि हँसी मजाक में असत्य वचन बोला जाता है, वे सदा ही आगम के अनुसार पाप रहित वचन बोलने का विचार किया करते हैं।

(३) अचौर्य महाव्रत

मन, वचन, काय से सर्वथा चोरी का त्याग करना मुनिराज बिना दिए हुवे किसी को कोई भी वस्तु ग्रहण नहीं करते। जल, मिट्टी तथा जंगल की पत्ती भी बिना दी हुई नहीं लेते हैं। अचौर्य महाव्रत का पालन करते मुनिराज इस बात का ध्यान रखते है कि वे घर या स्थान पर न रहे, जहाँ कोई असबाब वग़ैरह हो।

शून्य घर होना चाहिये जिससे किसी वस्तु के ग्रहण करने की प्रेरणा न हो। ऐसे स्थान में रहना जो छोड़ा हुवा हो, जिससे किसी के ग्रहण किये हुवे स्थान के ग्रहण करने का दोष न आवे। जो कोई और

दिन में ही चलना, रात्रि को नहीं चलना, ऐसे मार्ग में चलना जो मनुष्य और पशुओं के आने जाने से रौंदा हुवा हो, धीरे २ आगे को देखते हुवे चलना। चलते हुवे इधर उधर नही देखना अर्थात् ऐसी सावधानता से चलना जिससे किसी जीव की भी हिंसा न होवे।

(आ) भाषा समिति

हितकारी, प्रमाणिक, सन्देह रहित, मिष्ट वचन बोलना। मुनिराज के मुखारबिंद से ससार का उपकार करने वाले, सब तरह की बुराइयों का नाश करने वाले और कानो को सुखकारी, सब प्रकार का सन्देह दूर करने वाले और मिथ्यात्व रूपी रोग को नाश करने वाले अमृत समान बचन निकला करते हैं

(इ) एषणा समिति

दिन में एक बार निर्दोष आहार भिक्षा वृत्ति से लेते हैं। मुनिराज छियालीस दोष, बत्तीस अन्तराय को टालकर कुलीन श्रावक के घर केवल तप वृद्धि के अभिप्राय से आहार करते हैं, शरीर को पुष्ट करने का उनका उद्देश्य नहीं होता है।

(ई) आदान निक्षेपण समिति

शास्त्र, कमण्डलु, पीछी आदिक धर्म के उपकरणों को जो मुनि के पास होते है, उनको नेत्रो से देखकर

पीछी से शोध कर इस प्रकार उठाना कि किसी जीव को बाधा न हो।

(उ) व्युत्सर्ग समिति

जीव जन्तु रहित प्राशुक भूमि पर शरीर के मल मूत्र आदि इस प्रकार सावधानी के साथ डालना जिसमे किसी जीव को बाधा न हो। समिति मुनिव्रत का मूल है, मुनिराज अपने चारित्र को शुद्धि के हेतु इनका पालन करते हैं।

गुप्ति

भले प्रकार मन, वचन, काय की यथेच्छा प्रवृत्ति के रोकने का नाम गुप्ति है। गुप्ति तीन हैं:—

(क) मनो गुप्ति

ख्याति, लाभ, मान की बांछा बिना मनो योग को रोकना।

(ख) वचन गुप्ति

ख्याति, लाभ, मान की बांछा के बिना काय योग को रोकना।

(ग) काय गुप्ति

ख्याति, लाभ, मन की बांछा के बिना काय योग को रोकना।

गुप्ति ही मुनि पद का मूल है, गुप्ति बिना

सम्यक्चारित्र बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। इस तेरह प्रकार के चारित्र का पालन मुनिराज किया करते है।

इसके अतिरिक्त मुनिराज पांचो इन्द्रियों को जीतते है। पाचो इन्द्रियों के विषय में राग द्वेष नहीं करना पच्च इन्द्रिय विजय है।

मुनिराज छह आवश्यक का नित्य प्रति पालन किया करते है। सामायिक करते हैं, अर्हन्त भगवान् की स्तुति करते है, जिनेन्द्र प्रभु की वन्दना करते हैं, प्रतिक्रमण अर्थात् लगे हुवे दोषों को दूर करने के लिए पश्चाताप करते है, कायोत्सर्ग करते है, अर्थात् शरीर से ममत्व त्यागते हैं और खड़े होकर ध्यान लगाते हैं।

मुनिराज के सात बातें या विशेष गुण यह और होते हैं—वे स्नान नही करते, दन्तवन नहीं करते, नग्न रहते हैं, जमीन पर रात्रि के पिछले पहर मे एक ही करवट अल्प निद्रा लेते है, दिन मे एक बार थोडा सा आहार लेते हैं, वह भी खडे होकर और अपने बालो का लौंच करते हैं और जो क्षुधादि परिषहों से न डर कर अपने आत्म ध्यान मे मे लीन रहते है। इस प्रकार पंच महाव्रत, पंचसमिति, पंच इन्द्रिय विजय, छह आवश्यक, स्नान नहीं करना, दांत नहीं धोना, नग्न रहना, जमीन पर सोना, एक बार दिन में भोजन

करना, हाथों का ही पात्र बनाकर उसमे खड़े२ आहार लेना, अपने हाथ से अपने बालों का लौंच करना, यह कुल मिला कर साधुओं के २८ मूल गुण होते है, जो साधुओं मे होने ही चाहिए, जैसे मूल के बिना वृक्ष टिक ही नही सकता वैसे ही इन गुणो के बिना साधु हो नही सकता, इसलिये इनको साधुओ के २८ मूल गुण कहा गया है।

मुनिराज वीतरागी नि:स्पृही होते है, उनके लिये शत्रु मित्र, महल मसान, सोना और कांच, निंदा और स्तुति, पूजन करना या तलवार से प्रहार करना ये सब समान है। वे परम समता भाव के धारक होते हैं, हर अवस्था मे सदा शान्त चित्त रहते है।

मुनिराज अनशन, ऊनोदार, व्रत परिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन और काय क्लेश इन छह बहिरङ्ग के तप को तथा प्रायश्चित, विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग और ध्यान इन छहो अन्तरग के तप को कुल मिलाकर बारह प्रकार के तप को साधन करते हैं। उत्तम, क्षमा, मार्दव, आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य तथा उत्तम ब्रह्मचर्य, दशलक्षण धर्म का पालन करते हैं। वे सदा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय धर्म का पालन करते हैं। वे कभी

दूसरे मुनिवर के साथ या कभी अकेले विहार करते हैं, और स्वप्न मात्र मे भी संसार के विनाशीक सुख की इच्छा नही करते।

यह मुनि का सकल चारित्र वर्णन किया। निश्चय चारित्र से अपने आत्मा की ज्ञानादि सम्पत्ति प्रगट होती है और पर वस्तु से सर्व प्रकार की प्रवृत्ति मिट जाती है। जब मुनिराज स्वरूपाचरण के समय भेद ज्ञान रूपी वहुत तेज छैनी से अपने अन्तरंग का परदा तोड़कर और शरीर के वर्ण आदि बीस गुणों और राग, द्वेष, क्रोध, मान आदि भावो से अपने आत्मीक भाव को जुदाकर अपने आत्मा में अपने आत्म हित के लिये अपने आत्मा के द्वारा अपने आत्मा को आप ही ग्रहण करते है, तब गुण-गुणी, ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय मे कुछ भी भेद नहीं रहता अर्थात् एक ऐसी ध्यानमय अवस्था हो जाती है जिसमें ये सब एक हो जाते है, सब विकल्प मिट जाते हैं। उस ध्यान की अवस्था मे न ध्यान का, ध्याता का और न ध्येय का कोई भेद है और न बचन से कहने योग्य ही इनमे भेद है, उसमें तो चेतना भाव ही कर्म, चेतना ही कर्ता और 'चेतना ही क्रिया है, यहाँ कर्ता, कर्म, क्रिया, भाव बिल्कुल जुदा नहीं है और एक दूसरे से टूटने योग्य ही हैं। यहाँ तो शुद्ध भाव की स्थिर अवस्था है, जिसमे

दर्शन ज्ञान, चारित्र भी एक रूप होकर प्रकाशमान हो रहे है। उस ध्यान मग्नता में प्रमाण, नय, निक्षेप का प्रकाश अनुभव में नही आता, किन्तु उसमे आत्म विचार करता है कि मै दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य रूप हूँ, मुझ में कोई दूसरा भाव नहीं है। मै ही साध्य हूँ और मैं ही साधक हूँ, तथा कर्म और उनके फल से रहित भी मैं ही हूँ। मैं चैतन्य का पिण्ड अर्थात् समुद्र हूँ और मै ही प्रचण्ड खण्ड रहित उत्तम गुणोंका पिटारा हूँ तथा सर्व पापों से रहित हूँ।

इस प्रकार विचार करते करते मुनिराज जब आत्म-ध्यान में लीन हो जाते हैं, तो उन्हें जो अकथनीय आनन्द उस समय प्राप्त होता है, वह आनन्द न इन्द्र को मिलता है, न अहमिन्द्र को मिलता है, न चक्रवर्ति और नागेन्द्र को प्राप्त होता है।

उस समय वे शुक्ल ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा चार घातिया कर्म रूपी वन को भस्म कर केवलज्ञान को प्राप्त होते हैं और उसके द्वारा तीनों काल की बातों को हाथ में रखे हुए आवले की तरह जानकर भव्य पुरुषों को मोक्ष मार्ग का उपदेश करते हैं, यह उनकी अरहन्त अवस्था कहलाती है। इसके बाद वे आयु, नाम, गोत्र और वेदनी इन चारों अघातिया कर्मों को भी क्षण भर में क्षय करके मोक्ष को चले जाते हैं।

कर्मों का नाश होने पर उनके सम्यक्त आदि आठ गुण प्रकट हो जाते हैं। मोह के नाश से सम्यक्त, ज्ञानावरणी के नाश से ज्ञान, दर्शनावरणी के नाश से दर्शन, अन्तराय के नाश से वीर्य, आयु के नाश से अवगाहना नाम कर्म के नाश से सूक्ष्मतत्व, गोत्र कर्म के नाश से अगुरु लघु और वेदनी के नाश से अव्यावाध। वे ससार रूपी समुद्र से तिरकर और उसके पास पहुँच कर, विकार, शरीर और मूर्ति रहित हो शुद्ध चैतन्मय अविनाशी सिद्ध परमात्मा हो जाते है। सिद्ध भगवान् की आत्मा मे तीनो लोक और अलोक अपने २ गुण और पर्याय सहित ऐसे झलकते हैं जैसे दर्पण मे पदार्थ झलकते है। मोक्ष मे जैसे और सिद्धि हैं वैसे ही ये अनन्तानन्त काल तक रहेगे, वे जीव धन्य हैं। जिन्होने मनुष्य जन्म पाकर ऐसा काम किया। ऐसी महान् आत्माओ ने अनादिकाल से चले आये पच परावर्तन रूप ससार को त्याग कर उत्तम अविकार अतीन्द्रिय अविनाशी मोक्ष सुख को प्राप्त किया है। इस आनन्दमय सिद्ध अवस्था के पाने का कारण निश्चय और व्यवहार ऐसे दो दो भेद रूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र है। भव्य जीवो को आलस्य छोड़कर इन्हें ग्रहण करना चाहिये। जिन विषय

कषायो का हमेशा से सेवन किया उनसे मन को हटा कर मोक्ष सुख पाने का उद्यम मनुष्य भव के सिवा और दूसरे भव मे नही हो सकता। मनुष्य भव का पाना वडा ही कठिन है। एक बार ऐसा समय वृथा खो देने से फिर इसका मिलना बहुत ही दुर्लभ है इसलिये अब जो अमोलक अवसर प्राप्त हुआ है, उसे यूँ ही न गंवाकर अपने आत्म कल्याण के मार्ग पर आरूढ़ होना ही परम कर्तव्य है।

प्रश्नावली

१—सम्यक् चारित्र किसे कहते हैं ?

२—निश्चय और व्यवहार चरित्र मे क्या अन्तर है ?

३—व्यवहार चारित्र के कितने भेद हैं ? उनके नाम वताओ ?

४—सकल चारित्र से तुम क्या समझते हो ? इस चरित्र का पालन कौन करते हैं।

५—महाव्रत किसे कहते है ? महाव्रत कितने होते है उनके नाम वताओ।

६—समिति से आप क्या ममझाते है ? समिति कितने प्रकार की होती है ?

७—ईर्या समिति, आदान निक्षेपण और प्रतिष्ठापन समिति से क्या समझते हैं ?

८—भापा समिति और एपणा समिति का स्वरूप थपने शब्दो मे समझाओ।

९—गुप्ति किसे कहते हैं ? गुप्तियाँ कितनी होती हैं ? उनके नाम वताओ और प्रत्येक का स्वरूप समझाओ।

१०—मुनिराज के षट् आवश्यको के नाम वताओ।

११—साधुओ के २८ मूल गुण बताओ ।

१२—बारह प्रकार के तप के नाम बताओ ।

१३—निश्चय चरित्र का कुछ स्वरूप अपनी सरल भाषा में समझाओ ।

१४—क्या व्यवहार चारित्र निश्चय चारित्र के बिना कार्यकारी है ?

१५—क्या निश्चय चरित्र व्यवहार चारित्र के बिना कार्यकारी है ?

१६—पच इन्द्रिय विजय से क्या समझते हो ?

१७—दशलक्षण धर्म के नाम बताओ और उनका सक्षेप स्वरूप भी बताओ ।

१८—रत्नत्रय किसे कहते है ?

१९—तेरह प्रकार का चरित्र क्या है ?

२०—सिद्ध अवस्था का कुछ वर्णन सक्षेप से अपने शब्दोमे करो ।

विकल चारित्र या श्रावक धर्म

पहले बता चुके है कि व्यवहार सम्यक् चारित्र दो प्रकार का होता है । सकल चारित्र और विकल चारित्र का वर्णन तुम पहले भी धर्म शिक्षावली चतुर्थ भाग में पढ़ चुके हो ।

जिन वचन श्रद्धानी, न्यायमार्गी, पाप से डरने वाले, ज्ञानी विवेकी गृह कुटुम्ब, धनादिक सहित गृहस्थियों के विकल चारित्र होता है—गृहस्थियों का

चारित्र पंच अणुव्रत, तीन गुण व्रत चार शिक्षा व्रत रूप तीन प्रकार का होता है। पंच अणुव्रत इस प्रकार है :—

(१) अहिंसा अणुव्रत—स्थावर जीवों की हिंसा का त्यागी न होकर त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा का त्याग करना अहिंसाणुव्रत कहलाता है। इस अणुव्रत के पालने वाला स्थावर जीवों को भी व्यर्थ हिंसा नहीं करता, यत्नाचार पूर्वक व्यवहार करता है।

इस व्रत का पालन करने वाला मनुष्य, पशु आदि जीवों के नाक, कान, पूंछ आदि अंगोपांग को नहीं छेदता, जीवों को बन्धनो से जकड़ता नहीं, बन्दी-गृह मे रोकता नही। पक्षियों को पिजरे आदि में रोक कर रखता नही। जीवो को लात, मुक्का, लाठी, चाबुक, कोडा आदि से मारता नहीं। पशुओं पर तथा मनुष्यो पर, गाड़ा गाड़ी पर उनकी शक्ति से अधिक बोझ लादता नही, अपने आधीन मनुष्यो, पशुओं तथा अन्य जीवो को खाना पीना न देकर भूखा प्यासा नहीं मारता।

(२) सत्याणुव्रत—स्थूल झूठ बोलने का त्याग करना सत्याणुव्रत कहलाता है। इस व्रत का धारण करने वाला न तो आप झूठ बोलता है, न दूसरो से

बुलवाता है और ऐसा सच भी नहीं बोलता कि जिसके बोलने से दूसरों पर आपत्ति आ जावे या अपवाद फैल जावे।

इस व्रत का धारक मिथ्या उपदेश नहीं देता, दूसरों के दोष प्रगट नहीं करता, विश्वासघात नहीं करता, झूठी गवाही नहीं देता, झूठे जाली कागज तमस्सुक रसीद वगैरह नहीं बनाता, झूठे जाली मोहर और हस्ताक्षर वगैरह नहीं करता।

(३) अचौर्याणुव्रत—प्रमाद के वश होकर दूसरों की बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण करने का त्याग करना अचौर्याणुव्रत है।

इस व्रत का पालन करने वाला दूसरों को चोरी करने के उपाय नहीं बताता, चोरी का माल नहीं लेता राजा के महसूल आदि की चोरी नहीं करता, अथवा राज्य आज्ञा के विरुद्ध कार्य नहीं करता, लेन देन के बाट, तराजू, गज आदि को कम ज्यादा नहीं रखता। लेने के बाट और देने के बाट और नहीं रखता, ज्यादा कीमत वाली चीज में घटिया मिलाकर बढ़िया वस्तु में नहीं चलाता जैसे दूध मे पानी मिलाकर असली के तौर बेचना।

(४) ब्रह्मचर्याणुव्रत—अपनी विवाहिता स्त्री के सिवाय अन्य सब स्त्रियों से काम सेवन का त्याग

करना ब्रह्मचर्याणुव्रत है। इस व्रत का धारी अपने या अपने आधीन पुत्र पुत्रियो को छोड़ दूसरों के पुत्र पुत्रियों का विवाह नहीं करता कराता, काम सेवन के अंगों को छोड़कर अन्य अंगों द्वारा काम क्रीड़ा नहीं करता। मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को नीच नहीं करता, भंड चेष्टायें नहीं करता, पुरुष होकर स्त्री का वेष नहीं बनाता, स्वांग आदि नहीं रचता और न ही स्त्रियो जैसी चेष्टायें करता, काम सेवन की तीव्र अभिलाषा नहीं रखता, व्यभिचारिणी स्त्रियो के घर आता जाता नहीं, न उनको अपने घर बुलाता है, उनके साथ कोई व्यवहार नहीं करता, उनके रूप शृंगार को नहीं देखता।

(५) परिग्रह परिमाण अणुव्रत—जितने से अपने परिणामो में सन्तोष आजावे इतना परिग्रह का परिमाण कर के उससे ज्यादा की इच्छा नहीं करना, परिग्रह परिमाण अणुव्रत है, इस व्रत का धारक आवश्यकता से अधिक सवारी नहीं रखता। जितने रखता है उनसे भी जरूरत से ज्यादा काम नहीं लेता, आवश्यकता से ज्यादा व्यर्थ ही सामान तथा चीजो को संग्रह नहीं करता, दूसरों की अधिक सम्पदा या विभूति को देखकर तथा जिन वस्तुओं को कभी देखा या सुना

न हो उनको देखकर या सुनकर आश्चर्य नही करता, अति लोभी नही होता है, सन्तोषमय जीवन व्यतीत करता है, अपने आधीन पशुओ तथा मनुष्यो पर उनकी शक्ति से अधिक भार नहीं लादता, न उनसे उनकी सामर्थ्य से बाहर काम लेता है।

गुणव्रत—इन ऊपर लिखे पांचो अणुव्रतो को धारण करने के पीछे उन व्रतो मे बढोतरी करने के लिए तीन गुण व्रतों को धारण किया जाता है, वे तीन गुणव्रत ये हैः—

[अ] दिग्व्रत—लोभ आरम्भ को कम करने के लिए जीवन भर के लिए दशो दिशाओ मे आने जाने की हद बांध लेना दिग्व्रत है।

इस व्रत के धारी ने जितनी ऊँचाई तक जाने का प्रमाण किया है उससे ज्यादा ऊँचाई पर नहीं चढ़ेगा, टेढ़ा जाकर मर्यादा से बाहर नही जावेगा। जितने क्षेत्र का परिमाण किया हुवा है उससे ज्यादा नहीं बढ़ावेगा, दिशाओ की बाँधी हुई मर्यादा को भूलेगा नहीं।

[आ] देशव्रत—घडी, घंटा, दिन, पक्ष महीना वगैरह नियत समय तक दिग्वत में की हुई मर्यादा को और भी घटा लेना देशव्रत है।

"इस व्रत का पालन करने वाला मर्यादा से बाहर के क्षेत्र मे न आप जाता है और न किसी को भेजता है, न मर्यादा से बाहर वाले क्षेत्र में रहने वाले को खांसी से, खंखार से, कोई और आवाज से, तार टेलीफून चिट्ठी आदि द्वारा अपना अभिप्राय नहीं समझाता, मर्यादा से बाहर के क्षेत्र मे हाथ पाँव मुंह आदि से किसी प्रकार का इशारा करके काम नही कराता, कंकर पत्थर आदि फेंक कर मर्यादा से बाहर के क्षेत्र मे अपना इशारा नहीं पहुँचाता।

[इ] अनर्थ दण्ड विरति—ऐसे पाप कार्यों का त्याग करना जिससे अपना कोई प्रयोजन सिद्ध न होता हैं, ऐसे व्यर्थ पाप पाँच प्रकार के होते हैं। पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति और प्रमादचर्या।

व्यर्थ हिंसा के कार्यों का उपदेश देना पापोपदेश है। हिंसा के औजार फावड़ा, कुदाल, पींजरा, जंजीर आदि मांगे देना हिंसादान है। यदि इस प्रकार की चीजें अपने लिए रखना जरूरी हो तो रखे, दूसरों को दान करना तो व्यर्थ का पाप ही है। बैठे बिठाये दूसरो की चुगली करना, बुराई करना दूसरों का बुरा चाहना इत्यादि सब अपध्यान है। इससे अपना तो कुछ हित होता नही, पाप बंध ही हो जाता है। राग द्वेष,

काम क्रोधादि को उत्पन्न करने वाली पुस्तकें, नावल किस्से कहानियां पढ़ना, सुनना, दुःश्रुति है । बिना प्रयोजन जल खिडाना, जमीन कुरेदना, फूल तोड़ना, अग्नि जलाना, इत्यादि क्रिया करना जिसमे हिंसा होती हो तथा बिना सावधानी के व्यर्थ इस प्रकार प्रवर्तना कि जिससे जीव हिंसा हो प्रमाद चर्या है । अनर्थ दण्ड त्याग व्रत का पालन करने वाला ऐसे कोई व्यर्थ के कार्य कदापि नहीं करता ।

वह हंसी मजाक के भंड वचन नहीं बोलता, शरीर से भंड क्रिया तथा कुचेष्टा नहीं करता, व्यर्थ बकवास नहीं करता, बिना विचारे व्यर्थ ही जरूरत से ज्यादह अपने मन, वचन, काय की प्रवृत्ति नहीं करता, इससे शक्ति और समय का व्यर्थ मे नाश होता है; बिना प्रयोजन जरूरत से ज्यादह भोगोपभोग की सामग्री संग्रह नहीं करता ।

शिक्षाव्रत—गुणव्रतों को बढ़ाकर चार शिक्षा व्रत ग्रहण करने चाहियें इन से चारित्र मे अधिक उन्नति होती है । जिन व्रतों से मुनि धर्म की शिक्षा मिलती है अर्थात् अभ्यास होता है । उनको शिक्षा व्रत कहते हैं । ये शिक्षाव्रत चार हैं—सामायिक, प्रोषधोपवास परिमाण व्रत और अतिथि संविभाग ।

[क] सामायिक—समस्त पाप क्रियाओं से रहित हो कर सबसे राग द्वेष साम्य भाव को प्राप्त होकर आत्म स्वरूप में लीन होना सामायिक है ।

इस व्रत का पालन करने वाला मन को, वचन कों तथा काय को इधर उधर अन्यथा चलायमान नही होने देता, उत्साह रहित या अनादर से सामायिक नहीं करता सामायिक करते हुवें चित्त की चंचलता के कारण पाठ-जाप आदि को भूल नहीं जाता ।

[ख] प्रोषधोपवास—प्रत्येक अष्टमो और चतुर्दशी के पहले दिन अर्थात् सप्तमी और त्रयोदशी के दो पहर से लेकर पारने के दिन अर्थात् नवमी और पन्द्रस के दिन के दो पहर तक समस्त आरम्भ छोड़कर विषय कषाय तथा और सब प्रकार के आहार का त्याग करके सारे समय को धर्म सेवन मे व्यतीत करना प्रोषधोपवास है ।

इस व्रत का धारक बिना शोधि भूमि पर मल, मूत्र, कफ आदि नही डालता, बिना देखे, बिना शोधे उपकरणों को उठाता या रखता नही, बिना देखो, बिना शोधी भूमि पर सांथरा आदिक नही बिछाता, धर्म क्रिया को उत्साह रहित होकर नही करता हर्ष पूर्वक करता है, आवश्यक क्रियाओं को सावधानता

पूर्वक करता है उनको भूल नहीं जाता।

[ग] भोगोपभोग परिमाणव्रत—भोगोपभोग की वस्तुओ की मर्यादा करके बाकी सब का त्याग कर देना। इस व्रत का पालन करने वाला पाँचो इन्द्रियों के विषय को अपने लिए घातक समझता है, उनमें दिन प्रति दिन राग भाव को घटाता है, जो भोग पहले भोग चुका है उनको याद नहीं करता, जो भोग अब भोग रहा है उनमे आसक्त होकर लंपटता के साथ नहीं भोगता। आगामी काल मे भोगो को भोगने के लिए अति तृष्णा या लालुपता नहीं रखता, वास्तव मे विषयो को न भोगते हुवे और ऐसा विचार उसके दिल मे नहीं आता कि मै भोग रहा हूँ अर्थात् खयाल मे भी भोगो को नहीं भोगा।

इस व्रत का धारी संयमी होता है, १७ नियमों को पालता है, सप्त व्यसन का त्यागी होता है, अभक्ष्य का त्याग करता है।

[घ] अतिथि संविभागव्रत—फल की इच्छा के बिना भक्ति और आदर भाव से धर्म, बुद्धि पूर्वक मुनि त्यागी तथा अन्य धर्मात्मा पुरुषो को आहार, औषधि, ज्ञान और अभय चार प्रकार का दान देना। जो साधु भिक्षा के लिए भ्रमण करते है और जिनके आने के

लिए कोई समय या तिथि नियत नही है, उन्हे अतिथि कहते है। अपने कुटुम्ब के लिए बनाये हुवे भोजन मे से भाग करके देना समविभाग है।

इस व्रत का पालन करने वाला व्रतियो को दिये जाने योग्य आहार, जल, औषधि को हरे पत्तो जैसे कमल पत्र आदि सचित पदार्थों से नही ढाकता। हरे पत्र आदिक पर रखा हुआ भोजन, जल, औषधि आदि उनको दान में नही देता। दान को आदर भाव से देता है। अनादर या अविनय से नही देता। देने योग्य पदार्थ या दान को विधि को भूलता नही, किसी दूसरे दातार से ईर्षा करके दान नही देता।

तीन गुणव्रयो और चार शिक्षा व्रतो को मिलाकर सप्त शील कहते है। ये पच अणुव्रतो की रक्षा और वृद्धि करने वाले हैं।

श्रावक को इन बारह व्रतो के अतिरिक्त छह दैनिक कर्म भी नित्य प्रति करते रहना चाहिये। इन दैनिक षट् कर्मो को श्रावक के षट् आवश्यक कर्म भी कहते हैं—षट् कर्म के नाम ये है—देव पूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, सयम तप और दान।

सल्लेखना—श्रावक का यह भी धर्म है कि अन्त समय में जब मृत्यु का निश्चय हो जावे तो धर्म ध्यान के साथ प्राणो का त्याग करे । इसको सन्यास मरण, समाधि मरण या सल्लेखना कहते है । आहिस्ता २ सब प्रकार की क्रियाओ और चिन्ताओ को छोड कर तथा क्रमश सब खाने पीने का त्याग कर आत्म ध्यान मे लीन हो समता भाव पूर्वक प्राणो का त्याग करना ही श्रेष्ठ मरण है। इस सन्यास मरण या सल्लेखना को धारण करने वाला श्रावक सल्लेखना धारण करने के बाद अब आगे अधिक जीने की इच्छा नही करता, रोग और कष्ट के भय से जल्दी मरने की इच्छा नही करता, अपने मित्रो मे अनुराग नही रखता और न उनको याद करता है । पहले भोगे हुए भोगो का चिन्तवन नही करता और न ही आगामी भोगो के मिलने की वाँछा करता है ।

चारित्र की अपेक्षा देशव्रती श्रावक के ११ दर्जे हैं जो ग्यारह प्रतिमाए कहलाती है। उन्नति करते हुए एक से दूसरी और दूसरी से तीसरी आदि ग्यारह प्रतिमा तक चढ़ना होता है और उनसे भी ऊपर जाकर साधु होता है । आगे २ की प्रतिमाओ मे पहले पहले की प्रतिमाओ की क्रिया का होना भी जरूरी है ।

(१) दर्शन प्रतिमा—सम्यक् दर्शन मे २५ दोष नही लगाता, अष्ट मूल गुण का निरतिचार पालन करता है, सप्त व्यसन का त्यागी होता है। देव शास्त्र गुरु का दृढ श्रद्धानी होता है । अन्याय नही करता, दयालु होता है ।

(२) व्रत प्रतिमा—श्रावक के पच अणुव्रत तथा ३ गुणव्रत और ४ शिक्षा व्रतो का तथा कुल बारह व्रतो का निरतिचार पालन करता है ।

(३) सामायिक प्रतिमा—व्रती श्रावक सवेरे दोपहर और शाम को नियत समय के लिए नियम पूर्वक सामायिक करता है।

(४) प्रोषध प्रतिमा—महीने के चारो पर्वों मे अर्थात प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी को १६ पहर उपवास करना।

(५) सचित त्याग प्रतिमा—इस प्रतिमा का धारी हरी वनस्पति अर्थात कच्चे फल फूल बीज आदिक नही खाता—प्रासुक आहार और जल को ग्रहण करता है।

(६) रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा—रात्रि के समय कृत, कारित, अनुमोदना रूप से सर्व प्रकार के आहार का त्याग करना।

(७) ब्रह्मचर्य प्रतिमा—अपनी पराई किसी भी प्रकार की स्त्री से भोग नही करना, अखड निर्दोप ब्रह्मचर्य पालना।

(८) आरम्भ त्याग प्रतिमा—गृहस्थ सम्बन्धी सर्व प्रकार की क्रिया तथा आरम्भ का परित्याग करना, सन्तोष धारण करना।

(९) परिग्रह त्याग प्रतिमा—दश प्रकार के बाह्य परिग्रह से समता को त्याग कर सन्तोप धारण करना।

(१०) अनुमति त्याग प्रतिमा—किसी प्रकार के भी गृह सम्बन्धी, ससारी कार्यो मे सलाह-मशवरा नही देना। लाभ, अलाभ, हानि, वृद्धि, दुख-सुख आदि समस्त कार्यो मे हर्प विषाद करके अनुमोदना नही करना। जो कोई भोजन को बुलावे उसके यहाँ भोजन कर आना—ऐसे नही कहना कि अमुक भोजन हमारे लिए बनाओ, जो कुछ श्रावक जिमावे सो जीम लेना।

[११) उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा—गृहस्थ मे उदासीन हो कर घर छोड वन, मठ आदि मे तपश्चरण करते हुए रहना, भिक्षा वृत्ति से भोजन करना और खड वस्त्र धारण करना। इस प्रतिमा

धारी के दो भेद हैं—क्षुल्लक और ऐलक। क्षुल्लक अपनी डाढी आदि के केश उस्तरे, कैंची आदि से कटवाते है, लगोटी और खड वस्त्र रखते हैं, बैठकर अपने हाथ मे या किसी वर्तन मे भोजन करते हैं, ऐलक जो क्षुल्लक से ऊचे दर्जे के होते हैं केश लौंच करते है। केवल लगोटी रखते हैं। मुनि की तरह हाथ मे पीछी रखते हैं, और अपने हाथ मे ही भोजन करते हैं किसी बरतन मे नही करते।

जो भव्य जीव मुनि धर्म को पालन करने के लिए असमर्थ हैं, उन्हे चाहिए कि यथाशक्ति गृहस्थ धर्म का निर्दोष पालन करें और अपने जीवन को सफल बनावें।

वास्तव मे चारित्र ही धर्म है जो समता भाव है उसको ही धर्म कहा गया है, राग, द्वेष मोह रहित जो आत्मा का परिणाम है, वही समभाव है और वही चारित्र है, जो सम्यक चारित्र की आराधना करते हैं वे धन्य है जो कि पापो को जीतते हैं, ध्याना रूढ होते हैं वही वीतराग चारित्र को पाकर परम पद को प्राप्त होते हैं सम्यक् चारित्रवान की पूजा इन्द्रादि देव भी करते है जो चारित्रविहीन हैं, उनकी इस लोक मे निन्दा हुआ करती है, उनका परलोक भी कभी नही सुधरता। धन्य हैं वे महात्मा जिन्होने राग द्वेष परिणामो को विडार दिया है, जो समस्त परिग्रह का त्यागकर व्रतो मे दृढ हो निर्मल चित्त से तपश्चरण करते हैं, वे ही सच्चे धीर हैं, वे ही वैराग्यवान हैं, वे मोक्ष सुख

की [illegible] हैं, [illegible] में [illegible], वे ही धन्य हैं।

ऐसे चारित्र की [illegible] आदि सम्यक् धर्म का [illegible] । धर्म का [illegible] नहीं, मूलक [illegible] धर्म बता है [illegible] । जो [illegible] करने वाले हैं वे [illegible] मार्ग के चलने वाले हैं ये [illegible] समान हैं।

प्रश्नावली

१—त्रिरत्न चारित्र किसे कहते हैं ?

२—अणुव्रत किसे कहते हैं? अणुव्रत कितने हैं? उनके नाम बताओ और उनमें से प्रत्येक की व्याख्या अपने सरल शब्द में करो।

३—क्या एक अणुव्रती श्रावक नीचे लिखी बातें करेगा ?

अ. ऊँट या घोड़े पर शक्ति से अधिक बोझा लादना।

आ. दूसरों के दोष प्रकट करना।

इ. चुंगी का महसूल नहीं देना।

ई. गणिका का नाच देखना।

उ. बहुत वस्तुओं का संग्रह करना।

४—गुणव्रत किसे कहते हैं? ये कितने हैं, उनके नाम बताओ और प्रत्येक का स्वरूप भी समझाओ।

५—इनको गुणव्रत क्यों कहते हैं ?

६—शिक्षाव्रत से क्या समझते हो, ये कितने हैं ? प्रत्येक का स्वरूप समझाओ।

७—अनर्थ दण्ड विरति और सामायिक व्रत का स्वरूप समझाओ

८—भोग और भोगोपभोग के पदार्थों से तुम क्या समझते हो।

९—सल्लेखना से क्या समझते हो ? सल्लेखना व्रत कैसे पाला जाता है।

१२—प्रतिमा से क्या समझते हो, प्रतिमाये कितनी होती हैं ?

११—क्षुल्लक और ऐलक किसे कहते है ?

१२—समयक् चारित्र की महिमा अपने शव्दो मे वर्णन करो।

लव कुश

(प राजेन्द्रकुमार जैन कुमरेश)

सावन का महीना था, चारों ओर प्रमाद बरस रहा था, स्त्रियों के मधुरगीत स्वर हृदय मे गदगुदी पैदा कर रहे थे सर्वत्र हिडोले के दृश्य बड़े कमनीय मालूम होते थे। बच्चो से लेकर वड़े बूढ़े सभी के अन्तर मे सावन

अपना अनुराग राग बखेर रहा था। ये सभी सावन की प्रणय कल्लोलो मे लवलीन थे और थे अलमस्त।

सीता के भी इसी समय नौ मास गर्भ के पूर्ण हो गये। उसने इन्हीं प्रमोद भरे दिनों मे अपनी पुण्यमय कुक्षि से दो पुत्र प्रसव किये। पुर मे और अधिक आनन्द मनाया जाने लगा। स्थान स्थान पर रोशन चौकियां; शहनाइयां बजने लगी, प्रजाजन कुमारों की जय कामना करने लगे, वे दोनो कुमार भाग्यशाली तथा अनुपम तेज-पूर्ण थे।

धीरे धीरे समय निकलने लगा। सीता अपने युगल बालको की बाल लीला में अपने पति वियोग को भूल गईं, वह अपना परित्याग भूल गई वह भयानक अरन्य। सारा परिवार इनकी बाललीला से प्रमुदित, वे दोनों भाई दोज के चन्द्रमा से दिनोदिन बढने लगे मामा वज्रजंघ ने इनके पढ़ने की व्यवस्था करदी और फिर कुछ समय बाद वे दोनों भाई पढ़कर विद्वान हो गए।

अब इनके योवन के दिन थे। धीरे २ इनको सुप्त कामनायें जाग रही थीं। शरीर मे नवीन स्पंदन होने लगा था और मन नवीन २ कल्पनाओं की सृष्टि में उलझने लगा था एकदिन विचार होते ही वन क्रीड़ा के लिए मामा वज्रजंघ से आज्ञा ले वनकी ओर चल पड़े।

अरन्य की सुन्दरता में ये अपनी सुन्दरता से मधुर मधुर बखेर रहे थे और उसके सौन्दर्य की कर रहे थे लूट। चारों ओर मधुमास का बिखरा लावन्य इन्हें उत्साहित कर रहा था। वे अपनी लीलाओं पर अपने आप मुग्ध थे। बहुत कुछ खेल कूद कर वे एक सघन लता कुंज मे कुछ देर आराम करने के लिए बैठ गये। उनका बैठना ही था कि उधर आते हुए महाराज नारद मुनि पर उनकी दृष्टि पड़ी—वे उठ खड़े हुवे। दोनो ने उन्हें भक्ति पूर्वक प्रणाम किया। "राम लक्ष्मण की तरह तुम्हारा यश विश्व में व्याप्त हो" नारद ने उन्हें आशीर्वाद दिया।

'राम लक्ष्मन कौन हैं महाराज !' उन्होंने उत्सुकता से पूछा।

'क्या तुम नहीं जानते कुमार !'

'नहीं तो देव ! हम नहीं जानते, क्या आप बता सकेंगे वे कौन है !' नम्रता से कुमार ने पूछा।

हां क्यो नहीं बताऊँगा कुमार !' नारद ने सारा हाल कुमारो से कह सुनाया, वे बोले—'तुम्हारी माँ का परित्याग राम ने केवल अपवाद से ही कर दिया था।'

'केवल अपवाद से !'

'हां।'

'बिना परीक्षा लिए !'

'हाँ।'

इस प्रकार नारद का उत्तर सुनते ही कुमार क्रोधित हो उठे। नेत्र लाल हो गये। उन्होंने होठ चबाकर कहा—अच्छा हम भी देखेंगे वे कितने बहादुर हैं। हमारी माँ का अपमान! वे उसी समय उठ कर नगर की ओर चल पड़े। उन्होंने प्रतिज्ञा करली कि हम अपनी मां के अपमान का बदला उनसे अवश्य लेंगे। चाहे कुछ भी क्यो न हो।

प्रश्नावली

१. लव कुश कौन थे?
२ इनका जन्म कहाँ हुआ?
३. इनका पालन पोषण किसने किया?
४ लव कुश और नारद का क्या वार्तालाप हुआ?
५ नारद कौन होता है?

राम, लक्ष्मण और लव कुश का युद्ध

दि० जैन कथाङ्क परित्यक्ता से—
(ले०—प० राजेन्द्रकुमार जैन 'कुमरेश')

सीता बैठी हुई कुछ सोच रही थी, पास ही उनकी भाभियाँ हँसी मजाक कर रहीं थीं। कुमार सीधे वहां जा पहुंचे और जरा क्रोध भरे स्वर में बोले— 'मां!

क्या राम ने तुम्हारा अपमान किया है ?'

'नहीं तो' सीता ने व्यथित स्वर में कहा।

'क्यों उन्होंने तुम्हारा परित्याग नही किया।'

'हाँ' सीता के मुँह से निकल गया।

'तो हम उनसे इस अपमान का बदला अवश्य लेंगे मां।'

'नहीं बेटा, यह क्या कह रहे हो ! इसमें मेरा अपमान ही क्या है।' 'रहने दो मां! हम समझ गये, तुम हमें युद्ध से रोकना चाहती हो। लेकिन अब हम अवश्य ही उन से बदला लेकर रहेंहे, चाहे कुछ हो।'

वे यह कह कर बाहर चले गये।

मामा से उन्होने सारा हाल कह सुनाया। युद्ध का निश्चय हो गया। कुमार बदला लेने के लिए प्रति पक्ष व्यग्र हो रहे थे।

सरयू के किनारे दोनो ओर की सेनायें आ डटीं, युद्ध प्रारम्भ हो गया। मारकाट, खून खच्चर होने लगा, लेकिन परिणाम कुछ भी नहीं, दोनों ओर के अधिनायकों के शस्त्र कार से हो रहे थे, किसी का वार किसी पर भी नहीं चलता था।

लक्ष्मण युद्ध करते २ थकसा गया। राम विचार सागर में गोते लगाने लगे। हम बलभद्र नारायण नहीं हैं शायद ये ही हों, इसलिये तो हमारा वार काम नहीं

देता।' वे कांप गये।

लक्ष्मण ने अन्तिम शस्त्र चक्र चलाना चाहा। उसने उसे हाथ में उठा लिया, वह चलाना ही चाहता था कि—

'ठहरो' किसी के मधुर स्वर उसके कान में पड़े। उसने आँख उठाकर देखा। सामने से नारद महाराज आ रहे थे। लक्ष्मण ने प्रणाम किया और व्यथित स्वर मे बोला -'देव ! आज शस्त्र काम नही करते, क्या बात है मै तो बड़ा परेशान हूँ।'

'हाँ लक्ष्मणजी, आज शस्त्र काम नहीं देंगे।'

क्यो ? जानते हो ये कौन हैं ? जिनसे तुम युद्ध कर रहे हो।

'नहीं।'

यह तुम्हारे भतीजे, राम के पुत्र लव-कुश हैं समझे ! नारद ने आँख मारते हुवे कहा।

लव-कुश मेरे पुत्र ? राम ने शस्त्र फेंक दिये। हर्षाकुल होकर पुत्रो की ओर दौड़े, युद्ध बन्द हो गया।

सीता विमान मे बैठी हुई पुत्रो की वीरता देख रही थी। वह उनके कौशल पर मुग्ध थी। राम को पुत्रो की ओर आते देख कर अपने स्थान पर चली गई। जब लव और कुश ने देखा कि राम उन्हीं की ओर आ रहे है तो उन्होंने भी शस्त्र छोड दिये और दौड़

कर पिता के चरणों में गिर पड़े। राम ने उठा कर उन्हें हृदय से लगा लिया। उनकी आँखो से दो बूंद आँसू ढलकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

चारो ओर आनन्द मनाया जाने लगा। दोनो दल मिलकर एक हो गये। तब बड़े प्रेम से राजपुत्रों को राजधानी ले चले। पुत्रो की खुशी में दरबार लगा महाराज राम ने बड़े आदर से अपने पास बैठाया।

लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान,बज्रजघ आदि सब अपने स्थान पर बैठ गये। उन सब की एक ही इच्छा थी। सीता को बुलाने के लिये महाराज से आज्ञा प्राप्त करना, सब का इशारा पाकर सुग्रीव ने आकर कहा। महाराज ! अब भी महारानी सीता को बुलाना उचित है।

सुग्रीव ! मुझे सीता पर पहले कोई सन्देह नहीं था परन्तु जिस कारण उसका परित्याग किया था, वह कारण आज भी सामने है। अगर किसी उपाय से उसकी पवित्रता प्रगट हो जावे तब ही उसका यहाँ आना उचित होगा।

यह तो आपके ऊपर निर्भर है, महाराज चाहें तो उनकी परीक्षा ले सकते हैं।

परीक्षा, यह ठीक है, तब तुम सीता को यहाँ ले आ सकते हो।

जो आज्ञा देव ! सुग्रीव उसी समय परित्यक्ता सीता को लेने गये, दरबार बरखास्त हो गया।

आज सीता की परीक्षा है। नगर के समस्त नर नारी उस बड़े से अग्निकुण्ड के समीप एकत्रित होने लगे, अग्नि कुण्ड की प्रज्वलित लपटों को देख कर सभी का हृदय कांप रहा था, बच्चे रो रहे थे और युवतियाँ भयभीत !

यहाँ राम लक्ष्मण सभी व्याकुल प्रतीत होते थे, परन्तु सीता बड़ी शान्त और धैर्य से प्रभु का ध्यान कर रही थी। उसके हृदय पर तनिक भी भय या मलीनता की रेखा न थी। सीता ध्यान समाप्त कर खड़ी हो गई। आप अग्नि को देख कर बोली—"अग्नि-देव ! यदि मैंने रामचन्द्र जी के सिवाय, सोते जागते, उठते-बैठते मन से, वचन से, किसी अन्य पुरुष से पति भाव किया हो तो मेरे इस अधम शरीर को भस्म कर दो" ऐसा कह कर हँसते-हँसते अग्नि कुंड मे कूद पड़ी, सब लोग वेदना से चीख उठे, परन्तु एक ही क्षण में उन लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उन्होने देखा कि अग्निकुंड की जगह निर्मल जल परि-पूर्ण सुन्दर सरोवर और कमल सिंहासन पर सीता बैठी हुई है, चारो ओर आकाश से सीता की जय ध्वनि गूंज उठी।

और क्या किया ?

अब सीता की पवित्रता मे किसी को सन्देह न रहा था। रामचन्द्र भी प्रेम से सीता के पास आ पहुँचे और स्नेह भरे स्वर मे बोले—'सीते! आप साक्षात् देवी हैं, आपका परित्याग कर वास्तव में मैने बडी भूल की थी।'

'नही नाथ! आप क्या कह रहे हैं, सीता ने बात काटकर कहा—यह आपकी भूल न थी, यह था मेरे किसी पूर्वोपार्जित कर्म का परिणाम।'

'अब घर चलिये सीते!'

'नहीं देव! अब यह परित्यक्ता कभी घर न जा सकेगी।'

'क्यों ?'

इस क्यों का उत्तर सीता ने अपने केशो का लोच करके दिया। राम, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि सब ठगेसे रह गये। वह आर्जिका हो गई। परित्यक्ता सीता ने अपने जीवन को सार्थक बनाने का उद्यम उपक्रम कर लिया।

प्रश्नावली

१ लव-कुश और राम लक्ष्मण के युद्ध का वर्णन करो।
२ नारद ने राम से क्या कहा ?
३ युद्ध बन्द होने पर लव और कुश को राम कहाँ ले गये ?
४ सीता की अग्नि परीक्षा का वर्णन करो।
५. सीता ने अग्नि मे प्रवश करते समय क्या प्रतिज्ञा की थी।
६ अग्निपरीक्षा के बाद सीता राम के महल मे क्यो न आई ?